

मैसर्स बी एंड टी एजी

बनाम

रक्षा मंत्रालय

(माध्यस्थम् याचिका (सिविल) सं. 13/2023)

मई 18, 2023

[भारतीय मुख्य न्यायमूर्ति डॉ. धनंजय वाई. चंद्रचूड, और
न्या.जे. बी. पारदीवाला]

माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 -धारा 11-
परिसीमा अवधि – वादहेतुक – जब प्रोद्भूत किया जाए –
"विच्छेद बिंदु (ब्रेकिंग पॉइंट)" -बातचीत, यदि वादहेतुक को
स्थगित कर दिया जाता है- अभिनिर्धारित किया: नहीं- कोई
कार्रवाई करने हेतु परिसीमा अवधि की गणना करने हेतु
वादहेतुक महत्वपूर्ण हो जाता है- मध्यस्थता प्रारम्भ हेतु
परिसीमा की अवधि उस तिथि से चलती है जिस दिन
"मध्यस्थता हेतुक" प्रोद्भूत किया गया था, यानी उस तिथि से
जब दावेदार ने पहली बार कार्रवाई का अधिकार या
माध्यस्थम् की आवश्यकता का अधिकार प्राप्त किया था-धारा
11 के तहत एक आवेदन 1963 अधिनियम की अनुसूची के
अनुच्छेद 137 द्वारा शासित होता है और इसे पहली बार
आवेदन करने का अधिकार प्राप्त होने की तिथि से 3 वर्ष के
भीतर किया जाना चाहिए- जब तक कि प्रत्यर्थी द्वारा उस
अधिकार का स्पष्ट और साफ़ इनकार नहीं किया जाता, तब
तक आवेदन करने का कोई अधिकार नहीं है-मध्यस्थता हेतुक
उत्पन्न होते ही मध्यस्थता का दावा किया जाना चाहिए-क्या
कोई विशेष तथ्य कार्रवाई का कारण बनता है, इसका निर्धारण
कार्रवाई के स्वरूप के बजाय प्रत्येक मामले के तथ्यों और

पदार्थ के संदर्भ में किया जाना चाहिए - यदि किसी अधिकार का उल्लंघन किसी विशेष समय पर होता है, तो पूरा वादहेतुक तब और वहाँ उत्पन्न हुआ कहा जाएगा-ऐसे मामले में, किसी पक्ष के लिए यह प्रवृत्त नहीं है कि वह चुपचाप बैठे रहे और अपने अधिकार के विवाद के परिनिर्धारण के लिए आवेदन दायर न करे और समय बीतने पर इसे समाप्त होने दे-केवल बातचीत सीमित करने के उद्देश्य से कार्रवाई को स्थगित नहीं किया जायेगा -न्यायालय के लिए यह पता लगाना महत्वपूर्ण है कि "विच्छेद बिंदु (ब्रेकिंग पॉइंट)" क्या था, तथ्य का प्रश्न, जिस पर किसी भी उचित पक्ष ने परिनिर्धारण पर पहुँचने के प्रयासों को छोड़ दिया होगा और विवाद को मध्यस्थता हेतु निर्दिष्ट करने पर विचार किया होगा-"विच्छेद बिंदु (ब्रेकिंग पॉइंट)" का पता लगाने के लिए पक्षों के बीच बातचीत का पूरा इतिहास प्रस्तुत किया जाना चाहिए और न्यायालय के लिए रिकॉर्ड में रखा जाना चाहिए-जहां तक वादहेतुक के प्रोद्भूत होने और मध्यस्थ की नियुक्ति के लिए आवेदन करने के अधिकार का संबंध है, अनिश्चित काल तक द्विपक्षीय चर्चा से स्थिति को बचाया नहीं जा सकता - परिसीमा अधिनियम, 1963 - अनुच्छेद 137.

माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 -धारा 11 (6), 43-2012 में पक्षों के बीच की गई संविदा- प्रत्यर्थी द्वारा कथित रूप से दोषपूर्ण ढंग से परिनिर्धारित नुकसानी अधिरोपित करने और बैंक गारंटी को दोषपूर्ण ढंग से भुनाने के संबंध में विवाद -2016 रक्षा मंत्रालय में - याचिकाकर्ता ने केवल 2021 में मध्यस्थता का आह्वान करते हुए सूचना जारी की - याचिकाकर्ता के अनुसार पक्षकार संविदा के अनुसार

'द्विपक्षीय चर्चा' के माध्यम से विवादों को सौहार्दपूर्ण ढंग से हल करने का प्रयास कर रहे थे-याचिकाकर्ता द्वारा धारा 11(6) के तहत मध्यस्थ की नियुक्ति हेतु परिसीमा अवधि के भीतर होने का दावा करते हुए दायर की गई वर्तमान याचिका-समय-वर्जित दावे/दावे जो परिसीमा द्वारा वर्जित हैं, यदि इन्हें प्रत्यक्ष दावे कहा जा सकता है जिन्हें मध्यस्थता हेतु भेजा जा सकता है-अभिनिर्धारित किया:दोनों पक्षों के बीच विवाद वर्ष 2014 में ही शुरू हो गया था - जब 2016 में बैंक गारंटी को भुनाया गया और आवश्यक राशि सरकारी खाते में स्थानांतरित कर दी गई, तब यह मामला समाप्त हो गया - यह "विच्छेद बिंदु (ब्रेकिंग पॉइंट)" वह तिथि है जिस पर परिसीमा के उद्देश्य से वादहेतुक उत्पन्न हुआ-याचिकाकर्ता यह कहने में न्यायसंगत नहीं है कि उसने 2019 तक समझौता जारी रखा-दावे को लागू करने के लिए निर्धारित तीन वर्ष की सांविधिक समयावधि को इस आधार पर विफल नहीं किया जा सकता है कि दोनों पक्ष समझौता कर रहे थे - वर्तमान मामला एक निराशाजनक रूप से वर्जित दावे में से एक है, क्योंकि याचिकाकर्ता पांच वर्ष से अधिक समय से अपने अधिकार से अनभिज्ञता रखे हुए था - याचिका अस्वीकृत कर दी गई-परिसीमा अधिनियम, 1963-अनुच्छेद 137।

शब्द और वाक्यांश-"वादहेतुक"; "लागू करने का अधिकार" - का अर्थ - चर्चा की गई।

याचिका अस्वीकार करते हुए न्यायालय द्वारा

अभिनिर्धारित किया^{1.1} सामान्यतः कार्य पूर्ण होने पर भुगतान प्राप्त करने का अधिकार प्रारंभ हो जाता है। विवाद तब उत्पन्न होता है जब एक पक्ष द्वारा दावा किया जाता है और दूसरे पक्ष द्वारा उसका प्रत्याख्यान/निराकरण किया जाता है। कोई व्यक्ति बार-बार पत्र लिखकर या अनुस्मारक भेजकर प्रोद्भूत वादहेतुक को स्थगित नहीं कर सकता। जहां तक प्रोद्भूत वादहेतुक और मध्यस्थ की नियुक्ति के लिए आवेदन करने के अधिकार का संबंध है अनिश्चित काल के लिए 'द्विपक्षीय चर्चा' से स्थिति नहीं बच पाएगी। न्यायालय के लिए यह पता लगाना महत्वपूर्ण है कि "विच्छेद बिंदु (ब्रेकिंग पॉइंट)" क्या था, जिस पर किसी भी उचित पक्ष ने परिनिर्धारण पर पहुँचने के प्रयासों को छोड़ दिया होगा और मध्यस्थता हेतु विवाद को निर्दिष्ट करने पर विचार किया होगा। [पैरा 37,44 और 45] [618-घ-ड; 623-ग-घ]

मेजर (सेवानिवृत्त) इंदर सिंह रेखी बनाम दिल्ली विकास प्राधिकरण ए.आई.आर. 1988 एस.सी. 1887; जियो मिलर एंड कंपनी प्राइवेट लिमिटेड बनाम अध्यक्ष, राजस्थान विद्युत उत्पादन निगम लिमिटेड (2020) 14 एस.सी.सी. 643:[2019] 11 एस.सी.आर. 1108 - पर निर्भरता।

1.2 इस दलील के बीच एक विभेद है कि किए गए दावे परिसीमा से वर्जित हैं और यह दलील कि मध्यस्थ की नियुक्ति के लिए आवेदन परिसीमा से वर्जित है। [पैरा 52] [633-ग]

1.3 "वादहेतुक" का अर्थ भौतिक तथ्यों का पूरा पुलिंदा है, जिसे वाद में सफल होने का हकदार बनाने के लिए वादी को साबित करना आवश्यक है। किसी कार्रवाई को करने हेतु परिसीमा अवधि की गणना के प्रयोजनों के लिए वादहेतुक महत्वपूर्ण हो जाता है। यह अनिवार्य है कि जब कोई वादहेतुक सामने आए तो पक्ष को इसका एहसास हो। यदि कोई पक्ष अधिनियम 1996 के तहत संदर्भ माँगने के लिए सूचना भेजने में केवल इसलिए देरी करता है क्योंकि उन्हें यह स्पष्ट नहीं है कि वादहेतुक कब प्रोद्भूत हुआ, तो पक्ष को इसका एहसास होने से पहले ही दावा कालातीत हो सकता है। मध्यस्थता प्रारम्भ करने हेतु परिसीमा की अवधि उस तिथि से है जिस दिन "मध्यस्थता हेतुक" प्रोद्भूत होता है, अर्थात्, उस तिथि से जब दावेदार ने पहली बार कार्रवाई का अधिकार प्राप्त किया या संबंधित विवाद पर माध्यस्थम् की आवश्यकता थी। मध्यस्थता के प्रारम्भ हेतु सीमा की अवधि उस तिथि से प्रारम्भ होती है जिस दिन, यदि कोई मध्यस्थता खंड नहीं होता, तो वादहेतुक प्रोद्भूत होता। यहां तक कि यदि मध्यस्थता खंड में यह प्रावधान है कि किसी भी मामले के संबंध में कोई वादहेतुक प्रोद्भूत नहीं होगा जब तक कि कोई निर्णय नहीं दिया जाता है, तब भी समय सामान्य तिथि से चलता है जब वादहेतुक प्राप्त होता यदि कोई मध्यस्थता खंड नहीं होता। अधिनियम 1996 की धारा 11 के तहत यह आवेदन अधिनियम 1963 की अनुसूची के अनुच्छेद 137 द्वारा शासित होता है और पहली बार आवेदन करने का अधिकार मिलने की तिथि से 3 वर्ष के भीतर किया जाना चाहिए। आवेदन करने का कोई अधिकार नहीं है जब तक कि प्रतिवादी द्वारा

उस अधिकार से स्पष्ट और स्पष्ट इनकार न किया जाए। इसलिए, यह स्पष्ट होना चाहिए कि मध्यस्थता का दावा मध्यस्थता हेतुक उत्पन्न होते ही उठाया जाना चाहिए, जैसा कि किसी सिविल कार्रवाई में वादहेतुक मामले में होता है।[पैरा 54-55 और 57] [633-ज; 634-ग-ड; 635-ग]

द्विजेन्द्र नारायण राय बनाम जोगेस चंद्र डे और अन्य, ए.आई.आर. 1924 सी.ए.एल. 600; मुस्समत चंद कौर और एक अन्य बनाम प्रताप सिंह और अन्य आई.एल.आर. (1889) 16 सी.ए.एल. 98 - संदर्भित।

एंथनी वाल्टन द्वारा मध्यस्थता पर रसेल (19वां संस्करण) पीपी. 4-5 पर; द्वारा माध्यस्थम् विधि, न्यायमूर्ति बचावत पी. 549 - संदर्भित।

1.4 क्या कोई विशेष तथ्य वादहेतुक बनता है, इसका निर्धारण कार्रवाई के स्वरूप के बजाय प्रत्येक मामले के तथ्यों और सार के संदर्भ में किया जाना चाहिए। यदि किसी अधिकार का उल्लंघन किसी विशेष समय पर होता है, तो संपूर्ण वादहेतुक उसी समय उत्पन्न हुआ माना जाएगा। ऐसे मामले में, किसी पक्षकार किसी पक्ष के लिए यह खुला नहीं है कि वह चुपचाप बैठे रहे और अपने अधिकार के विवाद, जिसका उल्लंघन किया गया था, के परिनिर्धारण के लिए परिसीमा अधिनियम द्वारा प्रदान किए गए समय के भीतर आवेदन दाखिल न करे, और, समय बीतने पर अपने अधिकार को समाप्त होने दे। , और उसके बाद, कार्रवाई के किसी अन्य कारण की प्रतीक्षा करें और फिर अपने अधिकार की स्थापना

के लिए अधिनियम 1996 की धारा 11 के तहत एक आवेदन दायर करें जो तब अस्तित्वमय नहीं था, और, जो लंबे समय से समाप्त हो गया था, क्योंकि ऐसे मामले में, ऐसा आवेदन का मतलब एक अधिकार के पुनरुद्धार के लिए एक आवेदन होगा, जो लंबे समय से अधिनियम 1963 के तहत समाप्त हो गया था और इसलिए, सभी उद्देश्यों के लिए अस्तित्वमय नहीं है। ऐसी कार्यवाही संधार्य नहीं होगी और जाहिर तौर पर अधिनियम 1963 के अनुच्छेद 137 के तहत परिसीमा की दलील दी जाएगी। [[पैरा 58] [635-घ-च]

1.5 दिनांक 24.02.2016 के पत्र को पढ़ने से पता चलता है कि पक्षों के मध्य विवाद वर्ष 2014 में ही सामने आ गया था। यह उपरोक्त पत्र दिनांक 24.02.2016 में अंकित दिनांक 24.10.2014 से स्पष्ट है। पत्र इंगित करता है कि पक्षों के बीच विवाद उत्पन्न होने के बाद, याचिकाकर्ता ने अपना स्पष्टीकरण देने की कोशिश की और दिनांक 24.10.2014 के पत्र के माध्यम से अपना मामला रखा गया था। प्रत्यर्थी ने दिनांक 24.02.2016 को पत्र द्वारा स्पष्ट किया या याचिकाकर्ता को सूचित किया कि याचिकाकर्ता द्वारा दिनांक 24.10.2014 के पत्र के माध्यम से दिए गए औचित्य पर विधिवत विचार किया गया और उसके बाद, परिनिर्धारित नुकसानी को भुनाने हेतु अंतिम निर्णय लिया गया। इसलिए, याचिकाकर्ता का यह कहना उचित नहीं है कि वह 2019 तक समझौता करता रहा। इस संबंध में केवल अनावृत प्राख्यान पर्याप्त नहीं है। पक्षों के बीच बातचीत के पूरे इतिहास को विशेष रूप से पेश किया जाना चाहिए और अभिलिखित किया जाना चाहिए। बातचीत के पूरे इतिहास का अभिवाक करने और अभिलिखित करने के

बाद ही न्यायालय इस तरह के इतिहास पर विचार करने की स्थिति में होगा ताकि यह पता लगाया जा सके कि "विच्छेद बिंदु (ब्रेकिंग पॉइंट)" क्या था जिस पर किसी भी उचित पक्ष ने परिनिर्धारण पर पहुँचने के प्रयासों को छोड़ दिया होगा और मध्यस्थता हेतु विवाद को निर्दिष्ट करने पर विचार किया होगा। जब वर्ष 2016 में बैंक गारंटी भुनाई गई और अपेक्षित राशि सरकारी लेखे में स्थानांतरित हो गई, तो मामला समाप्त हो गया। इस "विच्छेद बिंदु (ब्रेकिंग पॉइंट)" को उस तिथि के रूप में माना जाना चाहिए जिस पर परिसीमा के उद्देश्य से वादहेतुक उत्पन्न हुआ था। वादहेतुक उत्पन्न होने के बाद दस वर्ष या बीस वर्ष की अवधि तक भी बातचीत जारी रह सकती है। केवल बातचीत सीमित करने के उद्देश्य से "वादहेतुक " को स्थगित नहीं किया जाएगा। विधानमंडल ने किसी दावे को लागू करने के लिए तीन वर्ष की सीमा निर्धारित की है और इस वैधानिक समयावधि को इस आधार पर विफल नहीं किया जा सकता कि पक्ष समझौता कर रहे थे। मौजूदा मामला स्पष्ट रूप से और निस्संदेह, निराशाजनक रूप से वर्जित दावों में से एक है, क्योंकि याचिकाकर्ता अपने आचरण से पाँच वर्ष से अधिक समय तक अपने अधिकार को लेकर बैठा रहा। सांविधिक मध्यस्थता भिन्न हैं। याचिका विफल होती है और अस्वीकार की जाती है। [पैरा 61-63, 66][637-ख-च; 641-ड]

*भारत संघ और अन्य बनाम मैसर्स
एल.के.आहूजा एंड कंपनी (1988) 3 एस.सी.सी.
76:[1988] 3 एस.सी.आर. 402; जे. सी.*

बुधराजा बनाम अध्यक्ष, उड़ीसा खनन निगम लिमिटेड और अन्य (2008) 2 एस.सी.सी. 444:[2008] 1 एस.सी.आर. 821; एसबीपी एंड कंपनी बनाम पटेल इंजीनियरिंग लिमिटेड और एक अन्य (2005) 8 एस.सी.सी. 618:[2005] 4 पूरक एस.सी.आर. 688; राष्ट्रीय बीमा कंपनी लिमिटेड बनाम बोधारा पॉलीफैब प्राइवेट लिमिटेड (2009) 1 एस.सी.सी. 267:[2008] 13 एस.सी.आर. 638; भारत संचार निगम लिमिटेड और अन्य बनाम नॉर्टेल नेटवर्क्स इंडिया प्राइवेट लिमिटेड (2021) 5 एस.सी.सी. 738; पंचू गोपाल बोस बनाम पोर्ट ऑफ़ कलकत्ता के लिए न्यासी मंडल (1993) 4 एस.सी.सी. 338:[1993] 3 एस.सी.आर. 361; उड़ीसा राज्य बनाम दामोदर दास (1996) 2 एस.सी.सी. 216: [1995] 6 पूरक एस.सी.आर. 800 - अवलंबित। परिसीमा के विस्तार के लिए संज्ञान, पुनः (2022) 3 एस.सी.सी. 117 में; समेकित इंजीनियरिंग उद्यम बनाम प्रधान सचिव, सिंचाई विभाग और अन्य (2008) 7 एस.सी.सी. 169 : [2008] 5 एस.सी.आर. 1108; मेर्ला रामन्ना बनाम नल्लापाराजू और अन्य [1955] 2 एस.सी.आर. 938; सिकंदराबाद छावनी बोर्ड बनाम बी. रामचंद्रैया एंड संस (2021) 5 एस.सी.सी. 705; एन.टी.पी.सी. लिमिटेड बनाम एस.पी.एम.एल. इन्फ्रा

लिमिटेड ने 2023 में एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 389 की सूचना दी; विद्या द्रोलिया और अन्य. वी.दुर्गा व्यापार निगम (2021) 2 एस.सी.सी. 1 : [2020] 11 एस.सी.आर. 1001-संदर्भित।

वेलस्पन एंटरप्राइजेस लिमिटेड बनाम एन.सी.सी लिमिटेड (2022) 295 डी.एल.टी. 286; जिलॉन इन्फ्राप्रोजेक्ट्स प्रा. 33 लिमिटेड बनाम भारत हैवी इलेक्ट्रिकल्स लिमिटेड ने 2023 में एस.सी.सी. ऑनलाइन कलकत्ता की सूचना दी 756-संदर्भित।

निर्णयज विधि संदर्भ

[2019] 11 एस.सी.आर. 1108	अवलंबित	पैरा 14
[2008] 5 एस.सी.आर. 1108	संदर्भित	पैरा 30
[1955] 2 एस.सी.आर. 938	संदर्भित	पैरा 34
[1988] 3 एस.सी.आर. 402	अवलंबित	पैरा 38
[2008] 1 एस.सी.आर. 821	अवलंबित	पैरा 40
[2005] 4 पूरक एस.सी.आर. 688	अवलंबित	पैरा 41
[2008] 13 एस.सी.आर. 638	अवलंबित	पैरा 42
(2021) 5 एस.सी.सी. 705	संदर्भित	पैरा 48
(2021) 5 एस.सी.सी. 738	अवलंबित	पैरा 49
[2020] 11 एस.सी.आर. 1001	संदर्भित	पैरा 49
[1993] 3 एस.सी.आर. 361	अवलंबित	पैरा 64
[1995] 6 पूरक एस.सी.आर. 800	अवलंबित	पैरा 64

सिविल मूल अधिकारिता: मध्यस्थता याचिका (सि) सं.
13/2023

पक्षों के मध्य दिनांक 27.03.2012 के संविदा के अनुसार माध्यस्थम् अधिकरण के गठन हेतु माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 ('अधिनियम') की धारा 11(12) के साथ पठित धारा 11(6) के तहत याचिका।

अभिमन्यु भंडारी, सुश्री रूह-ए-हिना दुआ, सुश्री अनन्या सीकरी, सुश्री धनाक्षी गांधी, याचिकाकर्ता के लिए अधिवक्ता।।

के. एम. नटराज, एसजी, सुश्री रुक्मिणी बोबडे, वत्सल जोशी, पी. वी. योगेश्वरन, विनायक शर्मा, अरविंद कुमार शर्मा, प्रत्यर्थी के लिए अधिवक्ता।

न्यायालय का निर्णय इनके द्वारा दिया गया

न्या., जे. बी. परदीवाला

1. यह माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 (संक्षेप में, 'अधिनियम 1996') की धारा 11(6) के तहत एक याचिका है, जो स्विट्ज़रलैंड में स्थित और हथियारों आदि के निर्माण के व्यवसाय में लगी हुई एक कंपनी के कहने पर दायर की गई है, जिसमें प्रत्यर्थी भारत सरकार के रक्षा मंत्रालय के साथ निष्पादित संविदा सं. 78953/एसएमजी/जीएस/डब्ल्यूई-4(जीएस-IV) दिनांक 27.03.2012 से उत्पन्न विवादों और दावों के निर्णय के लिए मध्यस्थ की नियुक्ति की प्रार्थना की गई है।

तथ्यात्मक मैट्रिक्स

2. प्रत्यर्थी, रक्षा मंत्रालय ने आरएफ़पी सं. 78953/एस.एम.जी./जी.एस./डब्ल्यू.ई.-4 दिनांक 18-11-2009 के माध्यम से फ़ास्ट ट्रेक प्रक्रिया के तहत 1,568 सब-मशीन गनों की खरीद के लिए एक तत्काल निविदा जारी की। याचिकाकर्ता ने निविदा प्रक्रिया में भाग लिया और अपनी बोली की पेशकश की। निविदा 21.12.2010 पर खोली गई थी और याचिकाकर्ता को सबसे कम स्वीकार्य बोलीदाता घोषित किया गया था। उचित बातचीत के बाद, संविदा निष्पादित की गई और 27.03.2012 को हस्ताक्षर किए गए।

3. पक्षों के बीच विवाद प्रत्यर्थी द्वारा वारंटी बंधपत्र के अभिकथित दोषपूर्ण भुनाने के संबंध में उत्पन्न हुआ था। प्रत्यर्थी ने अपने दिनांक 16.02.2016 के पत्र द्वारा से, संयुक्त मुख्य कार्यकारी अधिकारी, भारतीय स्टेट बैंक, फ़्रैंकफ़र्ट शाखा, जर्मनी को वा.बैं.गा. सं. 12/380 को इसके पूर्ण मूल्य अर्थात् 201,793.75 यूरो को भुनाने के लिए और पत्र में बताए गए विवरण के अनुसार रक्षा लेखा के प्रधान नियंत्रक (पी.सी.डी.ए., सरकारी लेखा) को सीधे बैंक हस्तांतरण द्वारा से राशि भेजने का निर्देश दिया। 16.02.2016 दिनांकित पत्र की एक प्रति याचिकाकर्ता को भी भेजी गई थी। प्रत्यर्थी की ओर से आवश्यक राशि के लिए परिनिर्धारित नुकसानी (परि.नु.) को भुनाने की यह कार्रवाई संविदा की समयावधि से परे माल की आपूर्ति में देरी के कारण की गई थी।

4. प्रत्यर्थी ने अपने दिनांकित 24.02.2016 पत्र के माध्यम से याचिकाकर्ता को सूचित किया कि वा.बैं.गा. भुनाने के लिए विषय निर्देश याचिकाकर्ता द्वारा दिनांकित 24.10.2014 के पत्र के माध्यम से मामले की उचित जाँच और

विश्लेषण के बाद जारी किए गए थे और इस तरह का भुनाना रक्षा मंत्रालय में सक्षम प्राधिकारी की मंजूरी से किया गया था। प्रत्यर्थी को भारत के राष्ट्रपति द्वारा दिनांकित 11.08.2016 पत्र के माध्यम से संविदा की शर्तों के अनुसार याचिकाकर्ता से लागू परि.नु. की वसूली के लिए 197,230.35 यूरो की कटौती करने की भी मंजूरी दी गई थी।

5. उपरोक्त संदर्भ में, 26.09.2016 पर प्रत्यर्थी ने लागू परि.नु. की वसूली के लिए राशि काट ली। परिणामस्वरूप, भारत के राष्ट्रपति की ओर से जारी किए गए दिनांकित 11.08.2016 पत्र में निहित निर्देशों के अनुसार राशि सरकारी लेखे में जमा की गई थी। तदनुसार, याचिकाकर्ता के दावे खारिज कर दिए गए।

6. उपरोक्त के बावजूद, दोनों पक्षों ने परि.नु. लगाने और वा.बैं.गा. को भुनाने के संबंध में विवाद को हल करने की संभावना का पता लगाने के लिए "द्विपक्षीय चर्चा" में खुद को संलग्न करना जारी रखा। हालाँकि, प्रत्यर्थी ने अपने दिनांकित 22.09.2017 पत्र के माध्यम से याचिकाकर्ता को सूचित किया कि प्रत्यर्थी द्वारा की गई सभी कार्रवाई संविदा की शर्तों के अनुसार थी, और याचिकाकर्ता को अपना मामला प्रस्तुत करने का पर्याप्त अवसर दिया गया था।

7. याचिकाकर्ता का दावा है कि दिनांकित 22.09.2017 पत्र जारी होने के बाद, पक्षकार समझौता करने और विवाद को हल करने के लिए एक-दूसरे के साथ निरंतर संपर्क में रहे। फिर भी, याचिकाकर्ता ने दिनांकित 04.09.2019 पत्र के माध्यम से प्रत्यर्थी से परि.नु. के गलत तरीके से लगाए जाने

की समीक्षा करने और चर्चा करने और याचिकाकर्ता को अपना मामला पेश करने का उचित अवसर देने का अनुरोध किया।

8. उपरोक्त उल्लिखित जैसी परिस्थितियों में, याचिकाकर्ता वर्तमान याचिका के साथ इस न्यायालय के समक्ष है।

याचिकाकर्ता की ओर से प्रस्तुतियाँ

9. शुरुआत में, याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता सुश्री दुआ ने इस न्यायालय से निम्नलिखित तिथियों और घटनाओं पर ध्यान देने के लिए एक जोरदार अपील की:

27.03.2012: याचिकाकर्ता और प्रत्यर्थी ने दिनांक
27.03.2012 को सं.
78953/एस.एम.जी./जी.एस./डब्ल्यू.ई.-4 के साथ
सहायक उपकरण के साथ 568 9एम.एम. एस.एम.जी.
मॉडल एम.पी-9 सब-मशीन गन ("संविदा") की
खरीद/आपूर्ति के लिए संविदा की। संविदा में एक
विवाद समाधान खंड शामिल था जिसमें मध्यस्थता
के लिए एक समझौता भी शामिल था (अनुच्छेद 21)।

16.02.2016: दिनांकित 16.02.2016 के पत्र के माध्यम
से 201,793.75 यूरो ("बी.जी.") के लिए बैंक गारंटी को
दोषपूर्ण ढंग से भुनाने और 399,0240.10 यूरो के लिए
दोषपूर्ण ढंग से परिनिर्धारित नुकसानी लगाने के संबंध में
पक्षों के बीच विवाद उत्पन्न हुआ।

22.09.2017: यह कहना उचित है कि 16.02.2016 और 22.09.2017 के बीच, दोनों पक्ष लगातार "द्विपक्षीय चर्चा" में लगे हुए थे, जैसा कि संविदा के अनुच्छेद 21 द्वारा विशेष रूप से अनिवार्य किया गया था ताकि परिनिर्धारित नुकसानी की दोषपूर्ण कटौती और बी.जी. के भुनाने के संबंध में उनके विवादों को हल किया जा सके। याचिकाकर्ता ने प्रत्यर्थी से बी.जी. के दोषपूर्ण तरीके से भुनाने पर पुनर्विचार करने का आग्रह किया था। हालाँकि, प्रत्यर्थी ने पहली बार दिनांकित 22.09.2017 पत्र के माध्यम से याचिकाकर्ता को सूचित किया कि वह अनुरोध पर पुनर्विचार नहीं करेगा।

2017-2019: दिनांक 22.09.2017 के संचार के बाद भी, पक्ष लगातार बातचीत करने और अपने विवादों को हल करने की कोशिश कर रहे थे। जिसके संबंध में याचिकाकर्ता ने महानिदेशक (अधिग्रहण) और अतिरिक्त सचिव के साथ एक बैठक में भी भाग लिया।

04.09.2019: याचिकाकर्ता ने आगे प्रत्यर्थी से परिनिर्धारित नुकसानी के दोषपूर्ण तरीके से लगाए जाने की समीक्षा करने और चर्चा करने और याचिकाकर्ता को अपनी स्थिति स्पष्ट करने का उचित अवसर देने का अनुरोध किया। याचिकाकर्ता ने इस स्थिति को एक तात्कालिक मामले के रूप में मानने पर जोर दिया क्योंकि इसमें शामिल है मैसर्स बी एंड टी एजी स्विट्ज़रलैंड, जिन्होंने भारत में अपने 9 मिमी एस.एम.जी. और 338 स्नाइपर राइफल्स के निर्माण के लिए हस्ताक्षर किए हैं, लेकिन उनके बोर्ड ने किसी भी "मेक इन

इंडिया" कार्यक्रम के साथ आगे बढ़ने से पहले इस बकाया मुद्दे के समाधान का अनुरोध किया है।

08.11.2021: मार्च 2020 में दुनिया कोविड से प्रभावित हुई थी। याचिकाकर्ता ने 08.11.2021 को प्रत्यर्थी को उक्त संविदा के अनुच्छेद 21 के तहत मध्यस्थता का आह्वान करते हुए दिनांकित 08.11.2021 को सूचना जारी की। याचिकाकर्ता ने अनसुलझे मुद्दों को गिनाया।

10.01.2022: सर्वोच्च न्यायालय ने एस.एम.डब्ल्यू. (सि) सं. 3/2020 में किसी भी सामान्य और विशेष विधि के तहत सीमा को 28.02.2022 तक बढ़ाने के लिए स्वप्रेरणा से संज्ञान लिया था।

03.02.2022: याचिकाकर्ता ने दिनांकित 03.02.2022 के ईमेल के माध्यम से प्रत्यर्थी से कार्यवाही में तेजी लाने का अनुरोध किया और आगे मध्यस्थ का नाम प्रस्तावित करने का सुझाव दिया जिसे संविदा के तहत विवादों के निर्णय के लिए नियुक्त किया जा सकता है।

18.02.2022: प्रत्यर्थी ने याचिकाकर्ता की मध्यस्थता सूचना के लिए अपनी दिनांक 18.02.2022 की प्रतिक्रिया के माध्यम से, मध्यस्थता कार्यवाही के आह्वान पर कोई आपत्ति नहीं जताई, हालाँकि सुझाव दिया कि प्रत्यर्थी एकमात्र मध्यस्थ का विकल्प नहीं चुनेगा और तीन सदस्यीय मध्यस्थ अधिकरण नियुक्त करने के पक्ष में है।

28.11.2022: याचिकाकर्ता ने दिनांकित 28.11.2022 ई-मेल और दिनांकित 25.11.2022 सूचना के

माध्यम से प्रत्यर्थी को उक्त संविदा के तहत विवादों के न्यायनिर्णयन के लिए माननीय श्री न्यायमूर्ति मुकुल मुद्गल (सेवानिवृत्त) अपने नामित मध्यस्थ के रूप में नियुक्त करने के लिए जवाब दिया। हालाँकि, प्रत्यर्थी को उक्त सूचना का कोई जवाब नहीं मिला है।

10. सुश्री दुआ ने प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता के दावे समय से बाधित नहीं हैं जैसा कि प्रत्यर्थी की ओर से दृढ़ता से कहा गया है। विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि प्रत्यर्थी ने दोषपूर्ण तरीके से परि.नु. की कटौती की और 16.02.2016 पर बैंक गारंटी को भुनाया। यह प्रस्तुत किया गया था कि दोनों पक्ष संविदा के अनुच्छेद 21.1 के अनुसार 'द्विपक्षीय चर्चा' के माध्यम से विवादों को सौहार्दपूर्ण ढंग से हल करने का प्रयास कर रहे थे।

11. सुश्री दुआ ने संविदा के अनुच्छेद 21 की ओर इस न्यायालय का ध्यान आकर्षित किया। अनुच्छेद 21 में विवाद समाधान तंत्र का प्रावधान है और इसे नीचे पुनः प्रस्तुत किया गया है:

"अनुच्छेद 21

माध्यस्थम्

21.1. वर्तमान संविदा से या उसके संबंध में उत्पन्न होने वाले सभी विवादों या मतभेदों को, जिसमें वर्तमान संविदा या उसके किसी भी भाग की वैधता से जुड़ा विवाद भी शामिल है, द्विपक्षीय चर्चाओं द्वारा निपटाया जाएगा।

21.2. इस संविदा से या उससे संबंधित या निर्माण से संबंधित किसी भी विवाद, प्रश्न की असहमति या निष्पादन (किसी ऐसे मामले को छोड़कर जिसके लिए इन शर्तों द्वारा निर्णय या निर्धारण का प्रावधान किया गया है), जिसका सौहार्दपूर्ण ढंग से परिनिर्धारित नहीं किया जा सकता है, साठ (60) दिनों के भीतर या ऐसी लंबी अवधि के भीतर होगा जिस पर पारस्परिक रूप से सहमति हो, उस तिथि से जिसे कोई भी पक्ष दूसरे पक्ष को एक सूचना द्वारा लिखित रूप में सूचित करता है कि ऐसा विवाद, असहमति या प्रश्न मौजूद है, उसे तीन मध्यस्थों वाले मध्यस्थता अधिकरण को भेजा जाएगा।

21.3. उक्त सूचना की प्राप्ति के साठ (60) दिनों के भीतर, एक मध्यस्थ को विक्रेता द्वारा लिखित रूप में नामित किया जाएगा और एक मध्यस्थ को क्रेता द्वारा नामित किया जाएगा।

21.4. तीसरा मध्यस्थ, जो किसी भी पक्ष के लिए अस्वीकार्य देश या किसी अन्य देश का नागरिक या अधिवासी नहीं होगा, उसे उपरोक्त सूचना प्राप्त होने के (90) दिनों के भीतर पक्षकारों में से नामित किया जाएगा, जिसमें विफल रहने पर तीसरे मध्यस्थ को किसी भी पक्ष के अनुरोध पर अंतरराष्ट्रीय वाणिज्य मंडल, पेरिस के अध्यक्ष द्वारा नामित किया जा सकता है, लेकिन उक्त नामांकन दोनों पक्षों के साथ परामर्श के बाद किया जाएगा और जैसा कि उल्लेख किया गया है, किसी भी देश के किसी भी नागरिक या

अधिवास को प्रतिबंधित करेगा। इस खंड के तहत नामित मध्यस्थ को न तो माना जाएगा और न ही वह अधिनिर्णायक के रूप में कार्य करेगा।

21.5. मध्यस्थता अधिकरण का स्थान नई दिल्ली या भारत में ऐसा कोई अन्य स्थान होगा जिस पर दोनों पक्षों के बीच परस्पर सहमति हो।

21.6. मध्यस्थता कार्यवाही भारत में भारतीय माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 के तहत संचालित की जाएगी और ऐसे मध्यस्थता अधिकरण का निर्णय केवल भारतीय न्यायालयों में ही लागू किया जा सकेगा।

21.7. मध्यस्थ के बहुमत का निर्णय अंतिम होगा और इस संविदा के पक्षों के लिए बाध्यकारी होगा।

21.8. प्रत्येक पक्ष अपना मामला तैयार करने और पेश करने का अपना खर्च वहन करेगा। तीसरे मध्यस्थ के शुल्क और खर्चों सहित मध्यस्थता की लागत विक्रेता और क्रेता द्वारा समान रूप से साझा की जाएगी, जब तक कि मध्यस्थता अधिकरण द्वारा अन्यथा निर्णय नहीं दिया जाता है।

21.9. मध्यस्थों के पद में रिक्तता की स्थिति में, जिस पक्ष ने ऐसे मध्यस्थ को नामित किया है, वह उसके स्थान पर दूसरे को नामित करने का हकदार होगा और मध्यस्थता की कार्यवाही उस स्तर से जारी रहेगी जो सेवानिवृत्त मध्यस्थ द्वारा छोड़ी गई थी।

21.10. यदि एक पक्ष उपरोक्त 60 दिनों के भीतर अपने मध्यस्थ को नामित करने में विफल रहता है या यदि कोई पक्ष मध्यस्थ का स्थान खाली होने के 60 दिनों के भीतर किसी अन्य मध्यस्थ को नामित नहीं करता है, तो दूसरा पक्ष कम से कम 30 दिनों की उचित सूचना के बाद अंतरराष्ट्रीय वाणिज्य मंडल, पेरिस के अध्यक्ष से उपरोक्त के अनुसार दूसरे मध्यस्थ को नामित करने का अनुरोध करने का हकदार होगा।

21.11. यदि तीसरे मध्यस्थ का स्थान खाली हो जाता है, तो उसके स्थानापन्न को उपरोक्त प्रावधानों के अनुसार नामित किया जाएगा।

21.12. मध्यस्थता कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान पक्ष इस संविदा के तहत अपने संबंधित दायित्वों का पालन करना जारी रखेंगी, सिवाय इसके कि जब तक ऐसे दायित्व उक्त मध्यस्थता कार्यवाही का विषय न हों।"

12. सुश्री दुआ के अनुसार, उपरोक्त निर्दिष्ट संविदा के अनुच्छेद 21.1 में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि वर्तमान संविदा के संबंध में उत्पन्न होने वाले सभी विवाद या मतभेद, जिसमें वर्तमान संविदा की वैधता या उसके कुछ भाग से जुड़ा विवाद भी शामिल है, का निपटारा 'द्विपक्षीय चर्चा' द्वारा किया जाएगा।

13. विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, रक्षा खरीद संविदाओं के रूप में विचाराधीन संविदा की विशिष्ट विशेषताओं में से एक है, यह पक्षों के हित में होगा कि वे मध्यस्थता कार्यवाही

शुरू करने के बजाय 'द्विपक्षीय चर्चा' के माध्यम से विवादों को हल करें। विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि प्रत्यर्थी ने पहली बार याचिकाकर्ता को दिनांक 22.09.2017 के पत्र द्वारा सूचित किया कि याचिकाकर्ता द्वारा परि.नु. की दोषपूर्ण कटौती और बैंक गारंटी को भुनाने के निर्णय पर पुनर्विचार करने के लिए रखा गया प्रस्ताव खारिज कर दिया गया था। विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, इसके बाद भी, अर्थात् 22.09.2017 के बाद, पक्षों ने 04.09.2019 तक एक-दूसरे के साथ समझौता करना जारी रखा।

14. *जियो मिलर एंड कंपनी प्राइवेट लिमिटेड बनाम अध्यक्ष, राजस्थान विद्युत उत्पादन निगम लिमिटेड, (2020)* 14 एस.सी.सी. 643 में दर्ज, के मामले में इस न्यायालय के निर्णय पर भरोसा करते हुए, यह प्रस्तुत किया गया था कि पूर्व-मध्यस्थता बातचीत में सद्भावना से बिताए गए समय को परिसीमा की अवधि की गणना के उद्देश्य से बाहर रखा जा सकता है।

15. विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, *जियो मिलर* (पूर्वोक्त) के मामले में इस न्यायालय के निर्णय का अनुपात वर्तमान मामले के तथ्यों पर पूरी तरह से लागू होता है। यह प्रस्तुत किया गया था कि एक बार जब पक्ष 'द्विपक्षीय चर्चा' में शामिल हो जाते हैं तो समय रुक जाता है क्योंकि संविदा पक्षों को चर्चा और बातचीत के माध्यम से विवादों को हल करने के लिए अनिवार्य करती है।

16. विद्वान अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता मध्यस्थता कार्यवाही में उचित साक्ष्य का नेतृत्व

करने की स्थिति में होगा ताकि यह स्थापित किया जा सके कि पक्षों ने 04.09.2019 तक समझौता और चर्चा करना जारी रखा। यह प्रस्तुत किया गया था कि, याचिकाकर्ता को प्रत्यर्थी का संचार, दिनांकित 22.09.2017 पत्र के माध्यम से परिनिर्धारित नुकसानी की कथित अवैध कटौती पर पुनर्विचार करने से इनकार करना, "विच्छेद बिंदु (ब्रेकिंग पॉइंट)" कहा जा सकता है। *परिसीमा के विस्तार के संज्ञान* में इस न्यायालय द्वारा पारित आदेश के अनुसार 'कोविड अवधि' को छोड़कर 22.09.2017 से तीन वर्ष की अवधि, (2022) 3 एस.सी.सी. 117 के मामले में दर्ज की गई, 22.09.2022 को समाप्त होगी। हालाँकि, याचिकाकर्ता द्वारा मध्यस्थता की सूचना 08.11.2021 को भेजी गई थी।

17. विद्वान अधिवक्ता ने आगे बताया कि प्रत्यर्थी ने अपने स्वयं के दिनांकित पत्र 18.02.2022 द्वारा मध्यस्थता के आह्वान पर आपत्ति नहीं जताई, हालाँकि, उसने केवल एकमात्र मध्यस्थ की नियुक्ति पर आपत्ति जताई।

18. अंत में, विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि परिसीमा का मुद्दा विधि और तथ्य का एक मिश्रित प्रश्न होने के कारण मध्यस्थता अधिकरण द्वारा देखा जाएगा। अधिनियम 1996 की धारा 11(6) के तहत दायर आवेदन पर निर्णय लेते समय बातचीत का "विच्छेद बिंदु (ब्रेकिंग पॉइंट)" क्या था, इस पर विचार नहीं किया जा सकता है।

19. उपरोक्त उल्लिखित ऐसी परिस्थितियों में, विद्वान अधिवक्ता ने अनुरोध किया कि अधिनियम 1996 की धारा 11(6) के तहत एक मध्यस्थता अधिकरण के गठन के लिए

दायर याचिका को अनुमति दी जा सकती है और मध्यस्थता अधिकरण का गठन किया जा सकता है।

प्रत्यर्थी की ओर से के प्रस्तुतियाँ

20. दूसरी ओर, भारत के विद्वान अतिरिक्त महा सॉलिसिटर श्री के.एम. नटराज ने वर्तमान याचिका का जोरदार विरोध करते हुए कहा कि न केवल अधिनियम 1996 की धारा 11(6) के तहत दायर याचिका समय वर्जित है, बल्कि याचिकाकर्ता द्वारा उठाए गए दावों को भी समय वर्जित कहा जा सकता है।

21. विद्वान अति.महा.सा. के अनुसार, याचिकाकर्ता की शिकायत बैंक गारंटी को भुनाने द्वारा परि.नु. की कटौती के इर्द-गिर्द घूमती है। इस तरह की कटौती में से अंतिम 26.09.2016 पर की गई थी। विद्वान अति.महा.सा. के अनुसार, वर्तमान मामले में वादहेतुक कारण 26.09.2016 पर उत्पन्न हुआ कहा जा सकता है। हालाँकि, संविदा के अनुच्छेद 21 के अनुसार मध्यस्थता के आह्वान के लिए सूचना केवल 08.11.2021 पर जारी की गई थी, अर्थात्, पाँच वर्ष से अधिक की अवधि के बाद और तीन वर्ष की परिसीमा अवधि से बहुत अधिक। विद्वान अति.महा.सा. के अनुसार, याचिकाकर्ता का दावा निराशाजनक रूप से समय-वर्जित है।

22. विद्वान अति.महा.सा. ने न्यायालय से वर्तमान याचिका पर निर्णय लेने के उद्देश्य से निम्नलिखित तिथियों और घटनाओं पर गौर करने का अनुरोध किया:

27.03.2012: याचिकाकर्ता और प्रत्यर्थी के बीच संविदा निष्पादित की गई थी।

26.09.2016: वादहेतुक उत्पन्न हुआ

परिनिर्धारित नुकसानी की अंततः कटौती की गई।

25.09.2019: 3 वर्ष की परिसीमा अवधि समाप्त हो गई।

08.11.2021: दावेदार के अधिवक्ता ने 'संविदा के अनुच्छेद 21 के तहत मध्यस्थता के आह्वान के लिए सूचना' भेजी।

16.11.2021: प्रत्यर्थी को मध्यस्थता का आह्वान करने वाली सूचना प्राप्त हुई।

03.02.2023: याचिकाकर्ता ने मध्यस्थता अधिकरण के गठन के लिए माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 की धारा 11(6) के तहत मध्यस्थता याचिका संख्या 13 अर्थात् वर्तमान याचिका दायर की।

23. अंत में, विद्वान अति.महा.सा. ने प्रस्तुत किया कि मध्यस्थता का आह्वान करने वाली सूचना जारी करने की परिसीमा की अवधि जो परिसीमा अधिनियम, 1963 (संक्षेप में, 'अधिनियम 1963') की अनुसूची में विशेष रूप से निर्धारित नहीं की गई है, अवशिष्ट अनुच्छेद अर्थात् उक्त अधिनियम की अनुसूची के अनुच्छेद 137 द्वारा शामिल की जाएगी।

24. उपरोक्त उल्लिखित ऐसी परिस्थितियों में, विद्वान अति.महा.सा. श्री नटराज ने अनुरोध किया कि याचिकाकर्ता के दावे पर अधिनियम 1996 की धारा 11(6) के तहत

वर्तमान याचिका पर विचार नहीं किया जा सकता है और इसे अस्वीकार किया जा सकता है।

विश्लेषण

25. पक्षों की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता को सुनने के बाद और अभिलेख पर सामग्री को देखने के बाद, एकमात्र सवाल जो हमारे पुनर्विचार के लिए आता है, वह यह है कि क्या समय-बाधित दावे या दावे जो परिसीमा द्वारा वर्जित हैं, उन्हें वर्तमान दावे कहा जा सकता है, जिन्हें मध्यस्थता के लिए भेजा जा सकता है?

26. दोनों ओर से दिखाए गए प्रतिद्वंद्वी प्रस्तुतियों को स्वीकार करने से पहले, हम अधिनियम 1996 और अधिनियम 1963 के कुछ प्रासंगिक प्रावधानों पर गौर कर सकते हैं।

27. अधिनियम 1996 की धारा 11 में मध्यस्थों की नियुक्ति का प्रावधान है। धारा 11 की उप-धारा (6) इस प्रकार है:

"11(6). जहाँ, पक्षों द्वारा सहमत नियुक्ति प्रक्रिया के तहत,

-

(क) एक पक्ष उस प्रक्रिया के तहत आवश्यकता के अनुसार कार्य करने में विफल रहता है; या

(ख) पक्षकार या दो नियुक्त मध्यस्थ उस प्रक्रिया के तहत उनसे अपेक्षित सहमति पर पहुँचने में विफल रहते हैं; या

(ग) एक व्यक्ति, एक संस्था सहित, उस प्रक्रिया के तहत उसे सौंपे गए किसी भी कार्य को करने में विफल रहता है।

एक पक्ष सर्वोच्च न्यायालय या, जैसा भी मामला हो, उच्च न्यायालय या ऐसे न्यायालय द्वारा नामित किसी भी व्यक्ति या संस्थान से आवश्यक उपाय करने का अनुरोध कर सकता है, जब तक कि नियुक्ति प्रक्रिया का समझौता नियुक्ति को सुरक्षित करने के लिए अन्य साधन प्रदान नहीं करता है।"

28. उपरोक्त प्रावधान के सरल पठन से संकेत मिलता है कि मध्यस्थ की नियुक्ति के लिए अधिनियम, 1996 की धारा 11(6) के तहत आवेदन दाखिल करने के लिए कोई समय सीमा निर्धारित नहीं की गई है।

29. अधिनियम 1996 की धारा 43 में प्रावधान है कि परिसीमा अधिनियम, 1963 मध्यस्थता पर लागू होगा जैसा कि यह न्यायालय की कार्यवाही पर लागू होता है। धारा 43 इस प्रकार है:

"43. परिसीमाएँ- (1) परिसीमा अधिनियम, 1963 (36/1936) मध्यस्थताओं पर वैसा ही लागू होगा जैसा वह न्यायालय की कार्यवाहियों पर लागू होता है।

(2) इस धारा और परिसीमा अधिनियम, 1963 (36/1936) के प्रयोजनों के लिए, एक मध्यस्थता धारा 21 में निर्दिष्ट तिथि को शुरू हुई मानी जाएगी।

(3) जहाँ मध्यस्थता के लिए भविष्य के विवादों को प्रस्तुत करने के लिए एक मध्यस्थता समझौते में यह प्रावधान है कि कोई भी दावा जिस पर समझौता लागू होता है, तब तक बाधित किया जाएगा जब तक कि समझौते द्वारा निर्धारित समय के भीतर मध्यस्थता कार्यवाही शुरू करने के लिए कोई कदम नहीं उठाया जाता है, और कोई विवाद उत्पन्न होता है जिस पर समझौता लागू होता है, तो न्यायालय, यदि यह राय रखता है कि मामले की परिस्थितियों में अन्यथा असमयक कष्ट उत्पन्न होगा, और इस तरह से निर्धारित समय समाप्त होने के बावजूद, ऐसी शर्तों पर, यदि कोई हो, मामले के न्यायाधीश की आवश्यकता के अनुसार, उस अवधि के लिए समय बढ़ा सकता है जो वह उचित समझता है।

(4) जहाँ न्यायालय आदेश देता है कि मध्यस्थता पुरस्कार को अलग रखा जाए, वहाँ मध्यस्थता के प्रारंभ और न्यायालय के आदेश की तारीख के बीच की अवधि को इस प्रकार प्रस्तुत किए गए विवाद के संबंध में कार्यवाही (मध्यस्थता सहित) के प्रारंभ के लिए परिसीमा अधिनियम, 1963 (36/1936) द्वारा निर्धारित समय की गणना करने में बाहर रखा जाएगा।"

30. ऊपर उल्लिखित अधिनियम 1996 की धारा 43 के संदर्भ में, हम (2008) 7 एससीसी 169 में दर्ज किए गए कॉन्सोलिडेटेड इंजीनियरिंग इंटरप्राइजेस बनाम प्रमुख सचिव, सिंचाई विभाग और अन्य के मामले में इस न्यायालय के

निर्णय का संदर्भ ले सकते हैं। उक्त मामले में, अपीलकर्ता की ओर से यह तर्क दिया गया था कि अधिनियम 1996 की धारा 43 अधिनियम 1963 के प्रावधानों को केवल मध्यस्थता पर लागू होती है न कि किसी न्यायालय में मध्यस्थता से संबंधित किसी भी कार्यवाही पर। अपीलकर्ता की ओर से किए गए इस तरह के विवाद को इस न्यायालय द्वारा अस्वीकार कर दिया गया था जिसमें कहा गया था:

"45. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि मा.सु. अधिनियम की धारा 43 परिसीमा अधिनियम के प्रावधानों को केवल मध्यस्थता के लिए लागू करती है, जिससे न्यायालय में मध्यस्थता से संबंधित किसी भी कार्यवाही के लिए आवेदन को बाहर करने का इरादा व्यक्त किया जाता है। अपीलकर्ता का तर्क परिसीमा अधिनियम की धारा 29(2) और मा.सु. अधिनियम की धारा 43(1) को नजरअंदाज करता है। अधिनियम की धारा 43 की उप-धारा (1) में प्रावधान है कि परिसीमा अधिनियम मध्यस्थता पर लागू होगा जैसा कि यह न्यायालय में कार्यवाही पर लागू होता है। मा.सु. अधिनियम की धारा 43 का उद्देश्य सीमा अधिनियम को न्यायालय के समक्ष कार्यवाही के लिए अप्रयोज्य बनाना नहीं है, बल्कि दूसरी ओर, परिसीमा अधिनियम को मध्यस्थता के लिए लागू करना है। जैसा कि पहले ही देखा जा चुका है, परिसीमा अधिनियम केवल न्यायालय में कार्यवाही पर लागू होता है, और लेकिन धारा 43 में व्यक्त प्रावधान के लिए, परिसीमा अधिनियम मध्यस्थता पर लागू नहीं

होता, क्योंकि मध्यस्थ निजी अधिकरण होते हैं न कि न्यायालय। मा.सु. अधिनियम की धारा 43, परिसीमा अधिनियम, 1963 के प्रावधानों को मध्यस्थता पर लागू करने के अलावा, दोहराती है कि परिसीमा अधिनियम न्यायालय में कार्यवाही पर लागू होता है। इसलिए, परिसीमा अधिनियम, 1963 के प्रावधान मा.सु. अधिनियम के तहत न्यायालय और मध्यस्थता दोनों में सभी कार्यवाही पर लागू होते हैं, सिवाय उस सीमा के जिसे मा.सु. अधिनियम के प्रावधानों द्वारा स्पष्ट रूप से बाहर रखा गया है।”

(जोर दिया गया)

31. चूँकि मध्यस्थता अधिकरण की नियुक्ति के लिए अधिनियम 1996 की धारा 11(6) के तहत एक याचिका उच्च न्यायालय या सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष दायर की जानी आवश्यक है, इसलिए अधिनियम 1963 की अनुसूची का अनुच्छेद 137 लागू होगा।

32. अनुच्छेद 137 इस प्रकार कहता है:

वाद का विवरण

परिसीमा वह समय जब अवधि से अवधि शुरू होती है

137. कोई अन्य आवेदन जिसके लिए इस प्रभाग में कहीं और कोई परिसीमा अवधि प्रदान नहीं की गई है।

तीन वर्ष जब आवेदन करने का अधिकार मिलता है।”

33. उपरोक्त अनुच्छेद के एक सामान्य पठन से संकेत मिलता है कि अनुच्छेद 137 के अंतर्गत आने वाले मामलों में परिसीमा की अवधि तीन वर्ष है और उक्त अवधि तब चलने लगेगी जब आवेदन करने का अधिकार प्राप्त होगा।

34. अनुच्छेद के तीसरे स्तंभ के अनुसार अनुच्छेद 137 के तहत परिसीमा का प्रारंभिक बिंदु वह तिथि है जब 'आवेदन करने का अधिकार उत्पन्न होता है'। यह अनुप्रयोगों के विभिन्न वर्गों के लिए अपनाया जाने वाला एक अवशिष्ट अनुच्छेद है, अभिव्यक्ति 'आवेदन करने का अधिकार' एक व्यापक सामान्य विधिक सिद्धांत की अभिव्यक्ति है और प्रत्येक मामले की परिस्थितियों के अनुसार इसकी व्याख्या की जानी चाहिए। 'आवेदन करने के अधिकार' की व्याख्या की गई है इसका अर्थ है 'पहले आवेदन करने का अधिकार उत्पन्न होता है'। (देखें: *मेरला रमन्ना बनाम नल्लापराजू और अन्य*, (1955) 2 एस.सी.आर. 938)

35. इसके अलावा, अधिनियम 1963 की धारा 9 का उल्लेख करना आवश्यक होगा जो इस प्रकार है:

"9. समय का निरंतर प्रवाह। - जहाँ एक बार समय चलना शुरू हो जाता है, वहाँ बाद में कोई रुकावट या वाद दायर करने या आवेदन करने में असमर्थता इसे रोक नहीं पाती है:

बशर्ते कि, जहाँ किसी लेनदार की संपत्ति को प्रशासन के पत्र उसके देनदार को दिए गए हैं, वहाँ ऋण की वसूली के वाद की परिसीमा अवधि का संचालन तब

तक निलंबित रहेगा जब तक कि प्रशासन जारी रहेगा।"

(जोर दिया गया)

विषय पर विधिक मामला

36. ए.आई.आर. 1988 एस.सी. 1887 में दर्ज किए गए *मेजर (सेवानिवृत्त) इंदर सिंह रेखी बनाम दिल्ली विकास प्राधिकरण* के मामले में, यह अभिनिर्धारित किया गया है कि माध्यस्थम् अधिनियम, 1940 (संक्षेप में, 'अधिनियम 1940') की धारा 8 के तहत मध्यस्थ की नियुक्ति या धारा 20 के तहत एक संदर्भ के लिए विवाद का अस्तित्व आवश्यक है और विवाद केवल तभी उत्पन्न हो सकता है जब एक पक्ष द्वारा दावा किया जाता है और दूसरे द्वारा किसी भी आधार पर इसे अस्वीकार कर दिया जाता है। केवल भुगतान करने में विफलता या निष्क्रियता से विवाद के अस्तित्व के बारे में अनुमान नहीं लगाया जा सकता है क्योंकि अभिव्यक्ति "विवाद" में दावे या अनुरोध को स्वीकार करने के लिए इनकार करने और केवल निष्क्रियता का एक सकारात्मक तत्व शामिल है। समयावधि के संबंध में, उस विशेष मामले के तथ्यों के आलोक में कि विवाद वास्तव में कब उत्पन्न हुआ, इस तथ्य के बावजूद कि विचाराधीन संविदा कार्य वर्ष 1980 में पूरा किया गया था, न्यायालय ने कहा कि भले ही यह सच था कि संविदा पूरा होने पर भुगतान प्राप्त करने का अधिकार सामान्य रूप से उत्पन्न होता है, लेकिन जहाँ अंतिम बिल तैयार नहीं किया गया था और जब दावे का प्राख्यान काम

पूरा होने के बहुत बाद किया गया था और भुगतान नहीं किया गया था, तो वादहेतुक उस तिथि से उत्पन्न हुआ जब प्राख्यान किया गया था। न्यायालय ने तब कहा कि यह भी सच है कि कोई पक्ष पत्र लिखकर या अनुस्मारक भेजकर वादहेतुक के संचय को स्थगित नहीं कर सकता है, लेकिन जहाँ बिल अंततः तैयार किया गया था, दावेदार द्वारा किया गया दावा वादहेतुक कारण का संचय है। उपरोक्त निर्णय में अनुपात की उचित समझ के लिए, हम यहाँ निर्णय के पैरा 4 को पूरी तरह से पुनः प्रस्तुत करते हैं। पैरा 4 इस प्रकार है:

"4. इसलिए, धारा 20 के तहत निर्देश के आदेश का हकदार होने के लिए, यह आवश्यक है कि एक मध्यस्थता समझौता होना चाहिए और दूसरा, अंतर उत्पन्न होना चाहिए जिस पर यह समझौता लागू होता है। इस मामले में इस बात पर कोई विवाद नहीं है कि मध्यस्थता समझौता हुआ था। अपीलार्थी द्वारा दावे का प्राख्यान किया गया है और मौन के साथ-साथ प्रत्यर्थी द्वारा इसके संबंध में इनकार किया गया है। इसलिए, अपीलार्थी के कथित बकाया का भुगतान न करने के संबंध में एक विवाद उत्पन्न हुआ है। प्रश्न यह है कि वर्तमान मामले में इस तरह का विवाद कब उत्पन्न हुआ। उच्च न्यायालय इस आधार पर आगे बढ़ा कि कार्य 1980 में पूरा किया गया था और इसलिए, अपीलार्थी उस तिथि से भुगतान का हकदार बन गया और उस तिथि से अनुच्छेद 137 के तहत वादहेतुक उत्पन्न हुआ। लेकिन अधिनियम की धारा 20 के तहत संदर्भ आदेश देने का हकदार होने के लिए

न केवल धन का अधिकार होना चाहिए, बल्कि एक अंतर या विवाद उत्पन्न होना चाहिए। यह सच है कि काम पूरा होने पर भुगतान प्राप्त करने का अधिकार सामान्य रूप से उत्पन्न होता है, लेकिन जहाँ इस मामले में अंतिम बिल तैयार नहीं किए गए हैं जैसा कि अभिलेख से पता चलता है और जब दावे का प्राख्यान 28 फ़रवरी 1983 को किया गया था और भुगतान नहीं किया गया था, तो उस तिथि से वादहेतुक, अर्थात् 28 फ़रवरी 1983। यह भी सच है कि एक पक्ष अनुस्मारक लिखकर या अनुस्मारक भेजकर वादहेतुक कारण के संचय को स्थगित नहीं कर सकता है, लेकिन जहाँ बिल अंततः तैयार नहीं किया गया था, दावेदार द्वारा किया गया दावा कार्य वादहेतुक का संचय है। एक विवाद उत्पन्न होता है जहाँ एक दावा और दावे का खंडन और अस्वीकृति होती है। धारा 8 के तहत मध्यस्थ की नियुक्ति या अधिनियम की धारा 20 के तहत एक संदर्भ के लिए विवाद का अस्तित्व आवश्यक है। आर.एस. बचावत द्वारा मध्यस्थता का कानून, पहला संस्करण, पृष्ठ 354 देखें। विवाद होना चाहिए और विवाद केवल तभी हो सकता है जब एक पक्ष द्वारा दावा किया जाता है और दूसरे द्वारा किसी भी आधार पर अस्वीकार किया जाता है। केवल भुगतान करने में विफलता या निष्क्रियता विवाद के अस्तित्व का अनुमान नहीं लगाती है। विवाद में इनकार करने में एक सकारात्मक तत्व और प्राख्यान शामिल होता है, न कि केवल किसी दावे या अनुरोध

मान लेने की निष्क्रियता। जब किसी विशेष मामले में विवाद उत्पन्न हुआ हो या नहीं, तो मामले के तथ्यों और परिस्थितियों से पता लगाना पड़ता है।"

(जोर दिया गया)

37. इस न्यायालय के उपरोक्त निर्णय से कानून के तीन सिद्धांत स्पष्ट हैं। सबसे पहले, आम तौर पर काम पूरा होने पर, भुगतान प्राप्त करने का अधिकार शुरू हो जाता है। दूसरा, विवाद तब उत्पन्न होता है जब एक तरफ दावा किया जाता है और दूसरी तरफ से इनकार/अस्वीकार किया जाता है और तीसरा, कोई व्यक्ति बार-बार पत्र लिखकर या अनुस्मारक भेजकर वादहेतुक के संचय को स्थगित नहीं कर सकता है। दूसरे शब्दों में, अनिश्चित काल के लिए 'द्विपक्षीय चर्चा' स्थिति को नहीं बचा पाएगी जहाँ तक वादहेतुक के संचय और मध्यस्थ की नियुक्ति के लिए आवेदन करने के अधिकार का संबंध है।

38. *भारत संघ और अन्य बनाम मैसर्स एल.के. आहूजा एंड कंपनी* में, (1988) 3 एस.सी.सी. 76 में प्रतिवेदित, इस न्यायालय ने निर्णय के क्रमशः पैरा 6 और 8 में मध्यस्थता कार्यवाही में लागू सीमा अवधि के संबंध में अनुपात निर्धारित किया है। पैरा 6 और 8 क्रमशः इस प्रकार पढ़े जाते हैं:

"6. ऐसा प्रतीत होता है कि इन प्रश्नों पर जीवनानी इंजीनियरिंग वर्क्स प्राइवेट लिमिटेड बनाम भारत संघ [ए.आई.आर. 1978 कलकत्ता 228] मामले में कलकत्ता उच्च न्यायालय के निर्णय में चर्चा की गई थी, जहाँ हममें से एक (न्या. सव्यसाची मुखर्जी) पक्षकार था

और जिसने इन सभी प्राधिकारियों पर चर्चा करने के बाद यह माना कि जिस दावे को उठाया जाना था वह परिसीमा द्वारा वर्जित था या नहीं, यह अधिनियम की धारा 20 के तहत आदेश के लिए प्रासंगिक नहीं था। अतः इसके दो पहलू हैं। एक यह है कि क्या मध्यस्थता में किया गया दावा परिसीमा अधिनियम के प्रासंगिक प्रावधान के तहत सीमा द्वारा वर्जित है या नहीं और दूसरा, क्या धारा 20 के तहत आवेदन के लिए किया गया दावा वर्जित है। माध्यस्थम् अधिनियम, 1940 की धारा 20 के तहत संदर्भ के लिए एक वैध दावा होने के लिए, यह आवश्यक है कि एक मध्यस्थता समझौता होना चाहिए और दूसरा मतभेद उत्पन्न होना चाहिए जिस पर विचाराधीन समझौता लागू होता है और तीसरा, वह अधिनियम की धारा 20 में आदेश समय के भीतर होना चाहिए।

XXX

XXX

XXX

8. अच्छी तरह से स्थापित सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए हमारा विचार है कि दोनों पहलुओं को जोड़ना पूरी तरह से गलत होगा, अर्थात्, क्या अधिनियम की धारा 20 के तहत संदर्भ के लिए कोई वैध दावा था और दूसरा, क्या मध्यस्थ द्वारा निर्णय लिए जाने वाले दावे को समय के अंतराल से रोक दिया गया था। दूसरा एक ऐसा मामला है जिसका निर्णय मध्यस्थ तब तक करेगा जब तक कि माध्यस्थम् अधिनियम की धारा 20 के तहत आदेश देते समय स्वीकार किए गए तथ्यों पर कोई दावा नहीं

पाया जाता है, जिसे परिसीमा द्वारा वर्जित किया जाता है। अधिनियम की धारा 20 के तहत संदर्भ आदेश देने का हकदार होने के लिए, धन का अधिकार और उसी के संबंध में अंतर या विवाद होना चाहिए। यह सच है कि काम पूरा होने पर भुगतान प्राप्त करने का अधिकार सामान्य रूप से उत्पन्न होता है और यह भी सच है कि अंतिम बिल के परिनिर्धारण पर, आगे भुगतान प्राप्त करने का अधिकार कमजोर हो जाता है लेकिन दावा बना रहता है और क्या यह बना रहता है, यह एक ऐसा मामला है जो मध्यस्थता योग्य है। इस मामले में संदर्भ के लिए दावा 16 अप्रैल, 1976 से शुरू होने वाले तीन वर्षों के भीतर किया गया था और आवेदन 13 दिसंबर, 1976 को दायर किया गया था। इसलिए, हमारा विचार है कि इस मामले में उच्च न्यायालय सही था। इस संबंध में इंदर सिंह रेखी बनाम दि.वि.प्रा. [(1988) 2 एस.सी.सी. 338] में इस न्यायालय की टिप्पणियों को देखें।

(जोर दिया गया)

39. इस प्रकार यह देखा जा सकता है कि एन.के. आहूजा (पूर्वोक्त) में न्यायालय दोहरे पहलुओं पर विचार कर रहा था, एक कि क्या मध्यस्थता में किया गया दावा संबंधित अधिनियम के प्रासंगिक प्रावधानों के तहत परिसीमा विधि द्वारा वर्जित था, और दूसरा कि क्या अधिनियम 1940 की धारा 20 के तहत आवेदन को परिसीमा द्वारा वर्जित किया गया था। अधिनियम 1940 की धारा 28 के संदर्भ में यह आवश्यक है कि एक मध्यस्थता समझौता होना चाहिए, दूसरा,

मतभेद उत्पन्न होने चाहिए जिन पर विचाराधीन समझौता लागू होता है और तीसरा कि आवेदन अधिनियम 1940 की धारा 20 में निर्धारित समय के भीतर होना चाहिए। परिसीमा पहलू के संदर्भ में न्यायालय ने पाया कि दावे का प्राख्यान और उसे अस्वीकार करना एक आवश्यक घटक था और फिर कहा कि दोनों पहलुओं को जोड़ना गलत होगा, अर्थात्, क्या अधिनियम 1940 की धारा 20 के तहत संदर्भ के लिए कोई वैध दावा था और क्या मध्यस्थ द्वारा निर्णय लिए जाने वाले दावे को समय के अंतराल से रोक दिया गया था।

40. इस पहलू पर कि क्या परिसीमा के विषय पर निर्णय का निर्णय मध्यस्थ को विवादों को संदर्भित करने वाले आदेश के पारित होने के चरण में किया जाना चाहिए, इस न्यायालय ने *जे.सी. बुधराजा बनाम अध्यक्ष, उड़ीसा माइनिंग कॉर्पोरेशन लिमिटेड और अन्य*, (2008) 2 एस.सी.सी. 444 में प्रतिवेदित के मामले में याचिका दायर करने के लिए परिसीमा की अवधि और समय द्वारा प्रतिबंधित किए जाने वाले दावों के बीच एक अच्छा अंतर निकाला है। हम *जे.सी. बुधराजा* (पूर्वोक्त) में इस न्यायालय द्वारा की गई प्रासंगिक टिप्पणियों को क्रमशः पैरा 25 और 26 में उद्धृत करते हैं, जो इस प्रकार हैं:

"25. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि परिसीमा उस तिथि से शुरू हो जाएगी जिस दिन पक्षों के बीच मतभेद उत्पन्न हुआ था, और इस मामले में अंतर केवल तभी उत्पन्न हुआ जब ओ.एम.सी. ने मध्यस्थता के संदर्भ के लिए दिनांकित 4-6-1980 की सूचना का पालन करने से इनकार कर

दिया। हम डरते हैं, विवाद बिना किसी योग्यता के है। अपीलकर्ता स्पष्ट रूप से मध्यस्थता अधिनियम, 1940 की धारा 8(2) के तहत याचिका की परिसीमा को दावे की परिसीमा के साथ भ्रमित कर रहा है। वाद की सीमा की गणना वाद दायर करने की तिथि से की जाती है। मध्यस्थता के मामले में, दावे की सीमा की गणना उस तिथि को की जानी है जिस दिन मध्यस्थता शुरू हुई मानी जाती है।

26. अधिनियम की धारा 37(3) में प्रावधान है कि परिसीमा अधिनियम के प्रयोजन के लिए, एक मध्यस्थता को तब शुरू किया गया माना जाता है जब मध्यस्थता समझौते का एक पक्ष दूसरे पक्ष को एक मध्यस्थ की नियुक्ति की आवश्यकता वाली सूचना पर कार्य करता है। 4-6-1980 को इस तरह की सूचना दिए जाने के बाद, यह देखना होगा कि क्या दावे उस तिथि को समय पर थे। यदि दावों को 4-6-1980 को रोक दिया गया था, तो यह इस प्रकार है कि दावों को मध्यस्थ द्वारा इस आधार पर खारिज कर दिया जाना था कि दावे परिसीमा द्वारा वर्जित थे। उक्त अवधि का अधिनियम की धारा 8(2) के तहत याचिका दायर करने की परिसीमा की अवधि से कोई लेना-देना नहीं है। जहाँ तक धारा 8(2) के तहत याचिका का संबंध है, वादहेतुक तब उत्पन्न होगा जब दूसरा पक्ष मध्यस्थता का आह्वान करने वाली सूचना का पालन करने में विफल रहता है। इसलिए, मध्यस्थ की नियुक्ति की माँग करने वाली धारा 8(2) के तहत याचिका दायर

करने की परिसीमा की अवधि को दावा करने की सीमा की अवधि के साथ भ्रमित नहीं किया जा सकता है। मेजर (सेवानिवृत्त) इंदर सिंह रेखी बनाम दि.वि.प्रा. [(1988) 2 एस.सी.सी. 338], पंचू गोपाल बोस बनाम कलकत्ता बंदरगाह के लिए न्यासी बोर्ड [(1993) 4 एस.सी.सी. 338] और उत्कल कमर्शियल कॉर्पोरेशन बनाम सेंट्रल कोल फ़िल्ड्स लिमिटेड [(1999) 2 एस.सी.सी. 571] में इस न्यायालय के निर्णय भी इस स्थिति को स्पष्ट करते हैं।"

(ज़ोर दिया गया)

41. एस.बी.पी. एंड कंपनी बनाम पटेल इंजीनियरिंग लिमिटेड और एक अन्य के मामले में, (2005) 8 एस.सी.सी. 618 में प्रतिवेदित, इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि किसी पक्ष को मध्यस्थता के लिए घसीटना जब कोई मध्यस्थता विवाद मौजूद नहीं है, निश्चित रूप से उस पक्ष के अधिकार को प्रभावित कर सकता है, और यहाँ तक कि मौद्रिक शर्तों पर भी, उस पर मध्यस्थता के खर्चों को पूरा करने के लिए एक गंभीर दायित्व अधिरोपित कर सकता है।

42. क्या समय-बाधित दावों को मध्यस्थता कार्यवाही में निर्णय के लिए संदर्भित किया जाना चाहिए, इस न्यायालय द्वारा नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम बोधारा पॉलीफ़ैब प्राइवेट लिमिटेड में देखा गया था, (2009) 1 एस.सी.सी. 267 में प्रतिवेदित किया गया था। उक्त निर्णय के पैरा 22 से 22.2 को क्रमशः इस प्रकार पढ़ा जाता है:

"22. जहाँ धारा 11 के तहत एक मध्यस्थ अधिकरण की नियुक्ति के लिए न्यायालय के हस्तक्षेप की माँग की जाती है, मुख्य न्यायमूर्ति या उनके पदनाम का कर्तव्य एस.बी.पी. एंड कंपनी [(2005) 8 एस.सी.सी. 618] में परिभाषित किया गया है। इस न्यायालय ने अधिनियम की धारा 11 के तहत एक आवेदन में विचार के लिए उत्पन्न होने वाले प्रारंभिक विषयों की पहचान की और उन्हें तीन श्रेणियों में विभाजित किया, अर्थात्, (i) ऐसे विषय जो मुख्य न्यायमूर्ति या उनके नामित व्यक्ति को तय करने के लिए बाध्य हैं, (ii) ऐसे विषय जो वह भी तय कर सकते हैं, अर्थात् ऐसे मुद्दे जो वह तय करने का विकल्प चुन सकते हैं, और (iii) ऐसे विषय जिन्हें तय करने के लिए मध्यस्थता अधिकरण पर छोड़ दिया जाना चाहिए।

22.1. जिन विषयों (पहली श्रेणी) पर मुख्य न्यायमूर्ति/उनके नामित व्यक्ति को निर्णय लेना होगा, वे हैं:

(क) क्या आवेदन करने वाले पक्ष ने उपयुक्त उच्च न्यायालय का दरवाज़ा खटखटाया है।

(ख) क्या यहाँ कोई मध्यस्थता समझौता है और क्या वह पक्ष जिसने अधिनियम की धारा 11 के तहत आवेदन किया है, ऐसे समझौते का एक पक्ष है।

22.2. जिन विषयों (दूसरी श्रेणी) को मुख्य न्यायमूर्ति/उनका नामित व्यक्ति तय करने के लिए

चुन सकता है (या उन्हें मध्यस्थ अधिकरण के निर्णय पर छोड़ सकता है) वे हैं:

(क) क्या दावा एक मृत (लंबे समय से वर्जित) दावा है या एक जीवित दावा है।

(ख) क्या पक्षों ने अपने पारस्परिक अधिकारों और दायित्वों की संतुष्टि दर्ज करके या बिना किसी आपत्ति के अंतिम भुगतान प्राप्त करके संविदा/लेनदेन का समापन किया है।"

43. *जियो मिलर* (पूर्वोक्त) में, इस न्यायालय ने पैरा 28 और 29 में निम्नलिखित टिप्पणी की:

"28. प्रासंगिक उदाहरणों को पढ़ने के बाद, हम इस बात से सहमत हैं कि तथ्यों और परिस्थितियों के एक निश्चित सेट पर, जिस अवधि के दौरान पक्ष सौहार्दपूर्ण परिनिर्धारण के लिए बातचीत कर रहे थे, उसे 1996 अधिनियम के तहत मध्यस्थता के संदर्भ के लिए परिसीमा की अवधि की गणना करने के उद्देश्य से बाहर रखा जा सकता है। हालाँकि, ऐसे मामलों में पक्षों के बीच बातचीत के पूरे इतिहास का विशेष रूप द्वारा अनुरोध किया जाना चाहिए और अभिलेख पर रखा जाना चाहिए। न्यायालय को ऐसे इतिहास पर सावधानीपूर्वक विचार करने पर यह पता लगाना चाहिए कि वह कौन सा "विच्छेदन बिंदु (ब्रेकिंग पॉइंट)" था जिस पर किसी भी तर्कसंगत पक्ष ने किसी परिनिर्धारण पर पहुँचने के प्रयासों को छोड़ दिया होगा और मध्यस्थता के लिए विवाद को संदर्भित करने पर

विचार किया होगा। इस "विच्छेदन बिंदु (ब्रेकिंग पॉइंट)" को तब उस तिथि के रूप में माना जाएगा जिस पर परिसीमा के उद्देश्य से वादहेतुक उत्पन्न होता है। जब ऐसा कोई मुद्दा उठता है तो निर्धारित करने की सीमा वाणिज्यिक विवादों के मामले में कम होगी, जहाँ पक्ष का प्राथमिक हित उन्हें देय भुगतान सुनिश्चित करने में है, पारिवारिक विवादों की तुलना में जहाँ यह कहा जा सकता है कि विवाद को सौहार्दपूर्ण ढंग से निपटाने में पक्षों की बड़ी हिस्सेदारी है, और इसलिए दावे के औपचारिक निर्णय में देरी हो रही है।

29. इसके अलावा, एक वाणिज्यिक विवाद में, जबकि केवल भुगतान करने में विफलता वादहेतुक नहीं बन सकती है, एक बार जब आवेदक ने अपना दावा पेश कर दिया है और प्रत्यर्थी ऐसे दावे का जवाब देने में विफल रहता है, तो ऐसी विफलता को विवाद को जन्म देने वाले आवेदक के दावे को अस्वीकार करने के रूप में माना जाएगा, और इसलिए मध्यस्थता के संदर्भ में वादहेतुक होगा। आवेदक का यह कहना झूठ नहीं है कि उसने विवाद को मध्यस्थता के लिए संदर्भित करने हेतु बहुत ही लंबी अवधि तक प्रतीक्षा की, केवल प्रत्यर्थी द्वारा अपने दावे को निपटाने में विफलता के कारण और क्योंकि वे इस बीच प्रत्यर्थी को अभ्यावेदन और अनुस्मारक लिख रहे थे।"

44. उपरोक्त टिप्पणियाँ यह बहुत स्पष्ट करती हैं कि न्यायालय के लिए जो महत्वपूर्ण है वह यह पता लगाना है कि वह "विच्छेद बिंदु (ब्रेकिंग पॉइंट)" क्या था जिस पर किसी

भी उचित पक्ष ने किसी परिनिर्धारण पर पहुँचने के प्रयासों को छोड़ दिया होगा और विवाद को मध्यस्थता के लिए संदर्भित करने पर विचार किया होगा।

45. याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने *जियो मिलर* (पूर्वोक्त) के पैरा 28 पर अपनी इस दलील को मजबूत करने के लिए भरोसा जताया है कि "विच्छेदन बिंदु (ब्रेकिंग पॉइंट)" सितंबर, 2019 में था, न कि 2016 में जैसा कि प्रत्यर्थी ने दावा किया था। तथ्य का प्रश्न यह है कि "विच्छेदन बिंदु (ब्रेकिंग पॉइंट)" क्या था और हम इस विषय पर थोड़ी देर बाद चर्चा करेंगे। तथापि, उपरोक्त निर्दिष्ट पैरा 28 को निर्णय के पैरा 21 में इस न्यायालय द्वारा की गई टिप्पणियों के साथ पढ़ा जाना चाहिए। पैरा 21 इस प्रकार है:

"21. उपरोक्त सिद्धांतों को वर्तमान मामले में लागू करते हुए, हम स्वयं को उच्च न्यायालय के निष्कर्ष से सहमत पाते हैं कि मध्यस्थता आवेदन सं. 25/2003 और 27/2003 के संबंध में अपीलार्थी का वादहेतुक, दिनांक 7-10-1979 और 4-4-1980 के कार्य आदेशों से संबंधित आदेश 8-2-1983 को उत्पन्न हुए, जब प्रत्यर्थी को सौंपा गया अंतिम बिल देय हो गया। इस तिथि के बाद प्रत्यर्थी को पत्र/अनुस्मारक लिखकर अपीलार्थी का मात्र पत्राचार परिसीमा के समय को नहीं बढ़ाएगा। इसलिए अधिकतम अवधि जिसके दौरान यह न्यायालय मध्यस्थ की नियुक्ति के लिए अपीलार्थी के आवेदन को अनुमति दे सकता था, उस तिथि से 3 वर्ष है जिस दिन अर्थात् 8-2-1986 को वादहेतुक उत्पन्न हुआ। इसी तरह, दिनांक 3-5-1985

के कार्य आदेश से संबंधित मध्यस्थता आवेदन सं. 28/2003 के संबंध में, प्रत्यर्थी ने कहा है कि अंतिम बिल सौंप दिया गया था और 10-8-1989 पर देय हो गया था। अपीलार्थी द्वारा इस पर विवाद नहीं किया गया है। इसलिए परिसीमा अवधि 10-8-1992 पर समाप्त हो गई। चूँकि अपीलार्थी ने 2002 में मध्यस्थ की नियुक्ति के लिए सूचना दी थी, और 2003 के अंत तक ही न्यायालय के समक्ष मध्यस्थ की नियुक्ति का अनुरोध किया था, इसलिए उसका दावा स्पष्ट रूप से परिसीमा से बाधित है।"

(जोर दिया गया)

46. ऊपर उल्लिखित पैरा 21 में की गई टिप्पणियों पर भरोसा करते हुए, प्रत्यर्थी की ओर से प्रस्तुत दलील यह है कि *जियो मिलर* (पूर्वोक्त) के पैरा 28 दिए गए तथ्यों के सेट में लागू हो सकता है जहाँ मौजूदा/निरंतर वादहेतुक है। हालाँकि, वर्तमान मामले में, बैंक गारंटी के नकदीकरण द्वारा परिनिर्धारित नुकसानी की कटौती की गई थी। यह प्रत्यर्थी की ओर से एक सकारात्मक कार्रवाई थी, जिसने वादहेतुक के अधिकार/कारण को स्पष्ट किया और इसकी निरंतर वादहेतुक के रूप में व्याख्या नहीं की जानी चाहिए।

47. *भारत संचार निगम लिमिटेड और एक अन्य बनाम नॉर्टेल नेटवर्क्स इंडिया प्राइवेट लिमिटेड* में, (2021) 5 एस.सी.सी. 738 में प्रतिवेदित, इस न्यायालय ने प्रासंगिक प्रावधानों का व्यापक विश्लेषण किया और कहा कि ऐसे

मामलों में जहाँ दावे समय से प्रतिबंधित हैं, न्यायालय अधिनियम 1996 की धारा 11 के तहत संदर्भ देने से इनकार कर सकता है। यह निर्णय महत्वपूर्ण है और हमें इस पर थोड़ा विस्तार से विचार करना चाहिए। अपीलार्थी बी.एस.एन.एल. ने दक्षिणी क्षेत्र में जी.एस.एम. आधारित सेलुलर मोबाइल नेटवर्क की योजना, इंजीनियरिंग, आपूर्ति, इन्सुलेशन, परीक्षण और चालू करने के लिए निविदा अधिसूचना जारी की। परियोजना के पूरा होने पर, अपीलार्थी ने परिनिर्धारित नुकसानी और अन्य उद्घृष्टितियों के लिए 99.70 करोड़ रुपये की विधारित की।

प्रत्यर्थी ने 04.08.2014 पर दावे को खारिज करने वाले अपीलार्थी से उपरोक्त राशि के भुगतान के लिए 13.05.2014 पर दावा किया।

प्रत्यर्थी ने 5.5 वर्ष से अधिक की अवधि के बाद मध्यस्थता खंड का आह्वान किया और 29.04.2020 पर एक स्वतंत्र मध्यस्थ की नियुक्ति के लिए अनुरोध किया। यह भी तर्क दिया गया कि उक्त राशि विधारित करने का विवाद समझौते के तहत मध्यस्थता विवादों के दायरे में आएगा। 09.06.2020 पर अपीलार्थी ने उत्तर दिया कि मध्यस्थ की नियुक्ति के अनुरोध पर विचार नहीं किया जा सकता है क्योंकि मामला पहले ही बंद हो चुका है और मध्यस्थता का आह्वान करने वाली सूचना समय वर्जित है।

प्रत्यर्थी ने मध्यस्थ की नियुक्ति के लिए केरल उच्च न्यायालय के समक्ष एक आवेदन दायर किया। उच्च न्यायालय ने अपने दिनांकित 13.10.2020 के आदेश के

माध्यम से विवादों को मध्यस्थता के लिए संदर्भित किया। अपीलार्थी ने दिनांक 13.10.2020 के आदेश के खिलाफ उच्च न्यायालय के समक्ष एक समीक्षा याचिका दायर की, जिसे न्यायालय ने अपने आदेश दिनांक 14.01.2021 द्वारा खारिज कर दिया। इसलिए, अपीलार्थी ने इस न्यायालय के समक्ष दो दीवानी अपीलें दायर कीं।

अपीलार्थी ने इस न्यायालय के समक्ष निम्नलिखित प्रस्तुत किया -

- मध्यस्थता का आह्वान करने के लिए वादहेतुक 04.08.2014 पर उत्पन्न हुआ जब प्रत्यर्थी द्वारा किए गए दावे को अंतिम बिल से कटौती करके खारिज कर दिया गया था।
- 29.04.2020 पर मध्यस्थता की सूचना जारी करने से पहले, प्रत्यर्थी ने 5.5 वर्षों से अधिक समय तक अपने कथित अधिकारों का दावा नहीं किया।
- प्रत्यर्थी ने इस अवधि के बीच में कोई कार्रवाई नहीं की और इसलिए मध्यस्थता का आह्वान करने वाली सूचना विधिक तौर पर पुरानी, गैर-माध्यस्थ और अप्रवर्तनीय हो गई थी।
- उच्च न्यायालय ने केवल एक वैध मध्यस्थता समझौते के अस्तित्व के आधार पर गलती से कार्यवाही की थी, बिना इस बात पर विचार किए कि ऐसा समझौता एक जीवित विवाद के अस्तित्व के साथ अटूट रूप से जुड़ा हुआ था।
- ऐसे मामलों में जहाँ मध्यस्थता समझौते का आह्वान प्रत्यक्ष रूप से समय से वर्जित है, न्यायालय को

मध्यस्थ की नियुक्ति के अनुरोध को अस्वीकार करना चाहिए जो एक सिविल कार्रवाई के बराबर है और अधिनियम 1963 की अनुसूची के अनुच्छेद 137 के तहत शामिल होगा।

- एक दावेदार द्वारा की गई कार्रवाई अनिवार्य रूप से उस तिथि से 3 वर्ष की वैधानिक अवधि के भीतर होनी चाहिए जिस दिन आवेदन करने का अधिकार प्राप्त होता है।

प्रत्यर्थी ने निम्नलिखित प्रस्तुत किया -

- माध्यस्थम् और सुलह (संशोधन) अधिनियम, 2015 द्वारा धारा 11 में संशोधन पूर्व-संदर्भ चरण में जाँच की एक सीमित परिधि प्रदान करता है जो धारा 11 (6क) के तहत मध्यस्थता समझौते के अस्तित्व तक ही सीमित है।
- कथित रूप से समय पर प्रतिबंध लगाए जाने के दावों के संबंध में आपत्ति का निर्णय मध्यस्थता अधिकरण द्वारा किया जा सकता है।
- उच्च न्यायालय ने उचित रूप से पूर्व-संदर्भ चरण में जाँच को मध्यस्थता समझौते के 'अस्तित्व' तक सीमित कर दिया।
- धारा 11 के तहत कार्यवाही शुरू करने के लिए परिसीमा का प्रारंभिक बिंदु 29.04.2020 पर मध्यस्थता की सूचना जारी करने की तारीख से 30 दिनों की समाप्ति है। इसलिए वादहेतुक निरंतर था। उच्च न्यायालय ने उचित रूप से अभिनिर्धारित किया था कि

परिसीमा के विषय का निर्णय मध्यस्थता अधिकरण द्वारा किया जाना चाहिए।

निम्नलिखित दो प्रश्न इस न्यायालय के विचार के लिए आए-

- अधिनियम 1996 की धारा 11 के तहत आवेदन दायर करने के लिए परिसीमा की अवधि; और
- क्या न्यायालय धारा 11 के तहत संदर्भ देने से इनकार कर सकता है जहाँ दावे प्रत्यक्ष रूप से समय से वर्जित हैं?

इस न्यायालय ने कहा कि अधिनियम 1996 को विवादों के त्वरित समाधान के लिए तैयार किया गया है और अधिनियम 1996 में विभिन्न प्रावधानों को शामिल किया गया है ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि मध्यस्थता की कार्यवाही समयबद्ध तरीके से की जा रही है। अधिनियम 1996 धारा 11(6) के तहत आवेदन दायर करने के लिए कोई समयावधि निर्धारित नहीं करता है। चूँकि अधिनियम 1996 में धारा 11 के तहत आवेदन दायर करने के लिए परिसीमा की अवधि निर्दिष्ट करने का कोई प्रावधान नहीं है, इसलिए अधिनियम 1996 की धारा 43 के अनुसार अधिनियम 1963 का सहारा लेना होगा, जिसमें प्रावधान है कि सीमा अधिनियम मध्यस्थों पर लागू होगा, जैसा कि इस न्यायालय में कार्यवाही पर लागू होता है।

चूँकि परिसीमा अधिनियम की अनुसूची के किसी भी अनुच्छेद में धारा 11 के तहत मध्यस्थ की नियुक्ति के लिए आवेदन दायर करने के लिए कोई समयावधि प्रदान नहीं की

गई है, इसलिए यह परिसीमा अधिनियम के अनुच्छेद 137 के तहत अवशिष्ट प्रावधान द्वारा शामिल किया जाएगा जिसके अनुसार परिसीमा किसी भी अन्य आवेदन के लिए परिसीमा की अवधि तीन वर्ष है जिसके लिए खंड में कहीं और परिसीमा की अवधि प्रदान नहीं की गई है। समय सीमा उस अवधि से शुरू होती है जब आवेदन करने का अधिकार प्राप्त होता है।

इस न्यायालय ने उच्च न्यायालय के कुछ निर्णयों सहित अपने विभिन्न अन्य निर्णयों पर भरोसा किया। इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि धारा 11 के तहत एक आवेदन न्यायालय में दायर किया जाना है, और चूँकि अधिनियम 1963 का कोई विशिष्ट अनुच्छेद लागू नहीं होता है, इसलिए अवशिष्ट अनुच्छेद लागू हो जाएगा। प्रभाव यह है कि धारा 11 के तहत आवेदन दायर करने की परिसीमा अवधि मध्यस्थ की नियुक्ति से इनकार करने की तिथि से तीन वर्ष या 30 दिनों की समाप्ति पर, जो भी पहले हो, है।

उक्त मामले में प्रत्यर्थी ने 29.04.2020 पर मध्यस्थता की सूचना जारी की थी जिसे अपीलार्थी ने 09.06.2020 पर खारिज कर दिया था। प्रत्यर्थी ने मध्यस्थ की नियुक्ति के अनुरोध की अस्वीकृति के तीन वर्ष की अवधि के भीतर 24.07.2020 पर उच्च न्यायालय के समक्ष धारा 11 के तहत एक आवेदन दायर किया।

इस न्यायालय ने बी.एस.एन.एल. द्वारा दायर अपीलों को निम्नानुसार स्वीकार किया:

"48. वर्तमान मामले के तथ्यों पर विधि को लागू करते हुए, यह स्पष्ट है कि यह एक ऐसा मामला है जहाँ दावों को प्रत्यक्ष रूप से साढ़े पाँच वर्ष से अधिक समय के लिए प्रतिबंधित किया गया है, क्योंकि नॉर्टेल ने 4-8-2014 को बी.एस.एन.एल. द्वारा अपने दावे को अस्वीकार करने के बाद कोई कार्रवाई नहीं की थी। मध्यस्थता की सूचना 29-4-2020 पर लागू की गई थी। मध्यस्थता की सूचना में, या धारा 11 के तहत दायर याचिका में, या इस न्यायालय के समक्ष, किसी भी हस्तक्षेप तथ्य के बारे में कोई अभिकथन नहीं है जो हो सकता है, जो परिसीमा अधिनियम की धारा 5 से 20 के भीतर आने वाली परिसीमा की अवधि को बढ़ाएगा। जब तक कि लागू होने वाली धारा को विशेष रूप से इंगित करने वाला कोई अनुरोधित मामला नहीं है, और यह उस तिथि से सीमा को कैसे बढ़ाता है जिस दिन वादहेतुक कारण मूल रूप से उत्पन्न हुआ था, तब तक सीमा के समय को बचाने का कोई आधार नहीं हो सकता है।

49. वर्तमान मामला गतिरोध/अस्तित्वहीन विवाद का मामला है क्योंकि वादहेतुक 4-8-2014 पर उत्पन्न हुआ था, जब नॉर्टेल द्वारा किए गए दावों को बी.एस.एन.एल. द्वारा खारिज कर दिया गया था। प्रत्यर्थी ने कोई ऐसी घटना नहीं बताई है जो कटौती करके अंतिम बिल की अस्वीकृति के तुरंत बाद परिसीमा अधिनियम की अनुसूची के अनुच्छेद 55 (जो संविदा के भंग से संबंधित मामलों के लिए परिसीमा

प्रदान करता है) के अनुसार शुरू हुई परिसीमा की अवधि को बढ़ाएगी।

50. 29-4-2020 दिनांकित मध्यस्थता का आह्वान करने वाली सूचना में यह कहा गया है कि:

“तब से याचिकाकर्ता और प्रत्यर्थीगण के बीच विभिन्न पत्रों का आदान-प्रदान हुआ है और निविदा दस्तावेज के तहत देय राशि का भुगतान न करने को लेकर याचिकाकर्ता और उत्तरदाताओं के बीच विवाद उत्पन्न हुआ है।”

51. मध्यस्थता की सूचना जारी करने की परिसीमा की अवधि केवल पत्रों के, [एस.एस. राठौर बनाम म.प्र. राज्य, (1989) 4 एस.सी.सी. 582 : 1990 एस.सी.सी. (एल एंड एस) 50; भारत संघ बनाम हर दयाल, (2010) 1 एस.सी.सी. 394; सी.एल.पी. (इंडिया) (प्रा.) लिमिटेड बनाम गुजरात ऊर्जा विकास निगम लिमिटेड, (2020) 5 एस.सी.सी. 185] या केवल परिनिर्धारण चर्चा के आदान-प्रदान से नहीं बढ़ेगी, जहाँ एक अंतिम बिल को कटौती करके या अन्यथा अस्वीकार कर दिया जाता है। परिसीमा अधिनियम की धारा 5 से 20 में समाधान चर्चाओं के कारण लगने वाले समय को शामिल नहीं किया गया है। परिसीमा अधिनियम की धारा 9 यह स्पष्ट करती है कि: "जहाँ एक बार समय बीतने के बाद, कोई बाद की अक्षमता या असमर्थता दायर करने या आवेदन करने में असमर्थता इसे नहीं रोकती है। "विशेष विवाद" [माध्यस्थम् और सुलह

अधिनियम, 1996 की धारा 21] को निर्धारित करते हुए मध्यस्थता का आह्वान करने के लिए एक स्पष्ट सूचना होनी चाहिए (दावों/राशियों सहित) जो अंतिम बिल की अस्वीकृति से 3 वर्ष की अवधि के भीतर दूसरे पक्ष द्वारा प्राप्त किया जाना चाहिए, ऐसा न करने पर समय वर्जन प्रबल होगा।

52. वर्तमान मामले में, मध्यस्थता का आह्वान करने वाली सूचना 4-8-2014 पर दावों की अस्वीकृति के साढ़े पाँच वर्ष बाद जारी की गई थी। नतीजतन, मध्यस्थता का आह्वान करने वाली सूचना प्रत्यक्ष रूप से समय-वर्जित है, और इस मामले के तथ्यों में पक्षों के बीच विवादों को मध्यस्थता के लिए संदर्भित नहीं किया जा सकता है।"

संशोधन की आवश्यकता

हालाँकि, उपरोक्त मामले में इस न्यायालय ने कहा कि चूँकि अधिनियम 1996 की धारा 11 के तहत परिसीमा की अवधि प्रदान करने के लिए विधि में रिक्तता है, इसलिए न्यायालयों ने इस स्थिति का सहारा लिया है कि परिसीमा अवधि परिसीमा अधिनियम, 1963 के अनुच्छेद 137 द्वारा शासित होगी जो उस तिथि से तीन वर्ष की अवधि प्रदान करती है जब आवेदन करने का अधिकार प्राप्त होता है। इस न्यायालय ने इसे धारा 11 के तहत आवेदन दायर करने के लिए एक अनुचित लंबी अवधि माना, क्योंकि यह अधिनियम 1996 के उद्देश्य को विफल कर देगा, जो एक समयबद्ध अवधि के भीतर वाणिज्यिक विवादों के त्वरित समाधान का प्रावधान

करता है। इस अधिनियम में क्रमशः 2015 और 2019 में संशोधन किया गया है ताकि यह सुनिश्चित करने के लिए और समय सीमा प्रदान की जा सके कि मध्यस्थता कार्यवाही का संचालन और समापन तेज़ी से किया जाए। धारा 29क आदेश देती है कि मध्यस्थ अधिकरण 18 महीने की अवधि के भीतर कार्यवाही को समाप्त कर देगा। विधायी आशय को ध्यान में रखते हुए, धारा 11 के तहत आवेदन दायर करने के लिए 3 वर्ष की अवधि अधिनियम की योजना के विपरीत होगी।

इसलिए, इस न्यायालय ने संसद के लिए अधिनियम 1996 की धारा 11 में संशोधन करना आवश्यक समझा, जिसमें सीमा की एक विशिष्ट अवधि निर्धारित की गई, जिसके भीतर एक पक्ष अधिनियम की धारा 11 के तहत मध्यस्थों की नियुक्ति के लिए आवेदन करने के लिए न्यायालय का रुख किया जा सकता है। [संदर्भ: श्री एम. गोविंदराजन द्वारा लिखित 'मध्यस्थ की नियुक्ति के लिए आवेदन दाखिल करने की परिसीमा' शीर्षक वाला लेख]

48. (2021) 5 एस.सी.सी. 705 में प्रतिवेदित
सिकंदराबाद छावनी बोर्ड बनाम बी. रामचन्द्रैया एंड संस में,
बी.एस.एन.एल (पूर्वोक्त) और जियो मिलर (पूर्वोक्त) दोनों को ध्यान में रखते हुए, इसे इस प्रकार माना जाता है:

"19. उपरोक्त निर्णयों को इस मामले के तथ्यों पर लागू करते हुए, जहाँ तक माध्यस्थम् अधिनियम की धारा 11 के तहत आवेदनों पर परिसीमा अधिनियम के अनुच्छेद 137 के लागू होने का संबंध है, यह स्पष्ट है

कि वर्तमान मामले में मध्यस्थता की माँग पत्र दिनांक 7-11-2006 द्वारा की गई थी। यह माँग दिनांक 13-1-2007 के एक पत्र द्वारा दोहराई गई थी, जिस पत्र में स्वयं अपीलार्थी को सूचित किया गया था कि मध्यस्थ की नियुक्ति 30 दिनों के भीतर करनी होगी। सबसे हाल ही में, इसलिए, इस मामले के तथ्यों पर, समय 12-2-2007 से शुरू हुआ। अपीलार्थी का संक्षिप्त पत्र दिनांक 23-1-2007, जिसमें कहा गया था कि मामला विचाराधीन था, 30 दिन की अवधि के भीतर था। 12-2-2007 को, जब कोई मध्यस्थ नियुक्त नहीं किया गया था, मध्यस्थ की नियुक्ति के लिए वाद हेतुक प्रत्यर्थी को दिया गया और उस दिन से समय शुरू हुआ। जाहिर तौर पर है, एक बार समय शुरू हो गया है, तो अपीलार्थी द्वारा अपने पत्र दिनांक 10-11-2010 द्वारा किसी भी अंतिम अस्वीकृति से परिसीमा अवधि की कोई नई शुरुआत नहीं होगी, जो कि परिसीमा अधिनियम की धारा 9 के आदेश के बाद पहले ही शुरू हो चुकी है। यह मामला होने पर, उच्च न्यायालय यह कहने में स्पष्ट रूप से गलती कर रहा था कि चूँकि माध्यस्थम् अधिनियम की धारा 11 के तहत आवेदन 6-11-2013 को दायर किए गए थे, वे 10-11-2020 से शुरू होने वाली तीन साल की परिसीमा अवधि के भीतर थे। इस आधार पर, माध्यस्थम् अधिनियम की धारा 11 के तहत आवेदन, निराशाजनक रूप से समय-वर्जित होने के कारण, उच्च

न्यायालय द्वारा कोई मध्यस्थ नियुक्त नहीं किया जा सकता था।

(जोर दिया गया)

49. 2023 एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 389 में प्रतिवेदित एनटीपीसी लिमिटेड बनाम एस.पी.एम.एल. इंफ्रा लिमिटेड में नोट किया गया कि अधिनियम 1996 की धारा 11(6) के तहत पूर्व संदर्भित क्षेत्राधिकार के संबंध में एक व्यापक सिद्धांत, जैसा कि (2021) 2 एस.सी.सी. 1 में प्रतिवेदित विद्या डोलिया और अन्य बनाम दुर्गा ट्रेडिंग कॉर्पोरेशन में निर्धारित किया गया है, और विद्या डोलिया के मामले में निर्णय के बाद, न्यायालयों द्वारा लगातार यह माना गया है कि गैर-मध्यस्थता के सभी प्रश्नों को निर्धारित करने और निर्णय लेने के लिए मध्यस्थ अधिकरण प्रस्तुत पहला प्राधिकरण था। न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया:

"25. चुनौतीपूर्ण कृत्य: उपर्युक्त उदाहरण विधि की स्थिति को स्पष्ट करते हैं कि अधिनियम की धारा 11(6) के तहत न्यायालयों का पूर्व-संदर्भित क्षेत्राधिकार बहुत संकीर्ण है और इसमें दो चीजों की जाँच की जानी चाहिए। प्राथमिक जाँच एक मध्यस्थता समझौते के अस्तित्व और वैधता के बारे में है, जिसमें समझौते के पक्षों और उक्त समझौते के लिए आवेदक की निजता के बारे में एक जाँच भी शामिल है। ये ऐसे मामले हैं जिनकी संबंधित न्यायालय द्वारा गहन जाँच की आवश्यकता है। द्वितीयक जाँच जो संदर्भ चरण में

ही उठ सकती है, वह विवाद की गैर-मध्यस्थता के संबंध में है।

26. एक सामान्य नियम और सिद्धांत के रूप में, मध्यस्थता अधिकरण गैर-मध्यस्थता के सभी प्रश्नों को निर्धारित करने और निर्णय लेने के लिए प्रस्तुत पहला प्राधिकरण है। नियम के अपवाद के रूप में, और शायद ही कभी विलंबकर्ता के रूप में, संबंधित न्यायालय उन दावों को अस्वीकृत कर सकती है जो स्पष्ट रूप से और पूर्व-नजरीय गैर-मध्यस्थता योग्य हैं [विद्या डोलिया पूर्वोक्त नोट 7, पैरा 154.4.]। इस स्थिति को स्पष्ट करते हुए, विद्या डोलिया (पूर्वोक्त) में निर्धारित सिद्धांतों से परिवर्तित होते हुए, इस न्यायालय ने नॉर्टेल नेटवर्क्स (पूर्वोक्त) [नॉर्टेल नेटवर्क्स पूर्वोक्त नोट 22, पैरा 45.1.] में एक बाद के निर्णय में कहा:

“45.1 ...न्यायिक मंच के रूप में धारा 11 के तहत क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते समय, न्यायालय प्रथम दृष्टया परीक्षण का उपयोग कर जाँच कर सकता है और पूर्व दृष्टया योग्यताहीन, तुच्छ और बेईमान मुकदमे को अस्वीकृत कर सकती है। न्यायालयों का सीमित क्षेत्राधिकार संबंधित स्तर पर शीघ्र और कुशल निपटान सुनिश्चित करेगा। संबंधित चरण में, न्यायालय "केवल" तभी हस्तक्षेप कर सकता है जब यह "प्रकट" हो कि दावे प्रथम दृष्टया समय-वर्जित और मृत हैं, या कोई मौजूदा विवाद नहीं है...”

27. किसी दावे की गैर-मध्यस्थता की जाँच करने के लिए जाँच का मानक केवल प्रथम दृष्टया है। संबंधित न्यायालयों को विवादित तथ्यों का पूर्ण पुनर्विलोकन नहीं करनी चाहिए; उन्हें केवल प्राथमिक प्रथम पुनर्विलोकन [विद्या झोलिया पूर्वोक्त नोट 7, पैरा 134.] तक ही सीमित रखा जाना चाहिए और तथ्यों को स्वयं प्रकट होने देना चाहिए। इसके लिए न्यायालयों को यह जाँचने की भी आवश्यकता है कि मध्यस्थता पर प्राख्यान प्रामाणिक है या नहीं [उक्त]। तथ्यों की प्रथम दृष्टया जाँच से यह स्पष्ट निष्कर्ष निकलना चाहिए कि इसमें जरा भी संदेह नहीं है कि दावा गैर-मध्यस्थता योग्य है [नॉर्टेल नेटवर्क्स पूर्वोक्त नोट 22, पैरा 47.]। दूसरी ओर, थोड़ा सा भी संदेह होने पर भी विवाद को मध्यस्थता के लिए भेजने का नियम है [विद्या झोलिया पूर्वोक्त नोट 7, पैरा 154.4.]।

28. चुनौतीपूर्ण कृत्य से सीमित जाँच आवश्यक और सम्मोहक है। यह संबंधित न्यायालय के कर्तव्य के साथ जुड़ा हुआ है कि जब मामला स्पष्ट रूप से गैर-मध्यस्थता [उक्त पैरा 154.4.] योग्य हो तो पक्षों को मध्यस्थता करने के लिए मजबूर होने से बचाया जाए। सार्वजनिक और निजी संसाधनों की बर्बादी को रोकने के लिए संदर्भ को अस्वीकार करने को न्यायालयों द्वारा वैध हस्तक्षेप करार दिया गया है [[उक्त पैरा 139]। इसके अलावा, जैसा कि विद्या झोलिया (पूर्वोक्त) में बताया गया है, यदि सीमित दायरे

के भीतर इस कर्तव्य का पालन नहीं किया जाता है, और न्यायालय हस्तक्षेप करने के लिए बहुत अनिच्छुक हो जाता है, तो यह मध्यस्थता और न्यायालय दोनों की प्रभावशीलता को कमजोर कर सकता है [उक्त]। इसलिए, यह न्यायालय या उच्च न्यायालय, जैसा भी मामला हो, अधिनियम की धारा 11(6) के तहत क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए, जैसा कि डी.एल.एफ. होम डेवलपर्स लिमिटेड बनाम राजापुरा होम्स प्राइवेट लिमिटेड मामले में बताया गया है, किसी आवेदक द्वारा चुने गए मध्यस्थ [डी.एल.एफ. होम डेवलपर्स लिमिटेड बनाम राजापुरा होम्स प्राइवेट लिमिटेड, 2021 एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 781, पैरा 18, 20.] के दरवाजे पर उठाए गए कथित विवाद को निपटाने के लिए यांत्रिक रूप से कार्य करना अपेक्षित नहीं है।

(जोर दिया गया)

50. याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने (2022) 295 डी.एल.टी. 286 में प्रतिवेदित वेलस्पन एंटरप्राइजेस लिमिटेड बनाम एन.सी.सी. लिमिटेड के मामले में दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय पर भी भरोसा जताया, जिसमें उच्च न्यायालय ने निम्नानुसार कहा था:

"58. उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, सीमा की अवधि तब चलेगी जब कोई पक्ष विवादों को मध्यस्थता के लिए संदर्भित करने का अधिकार प्राप्त कर लेगा। स्पष्ट रूप से, यदि मध्यस्थता समझौते में पक्षों को

मध्यस्थता लागू करने की पूर्व शर्त के रूप में विवाद समाधान प्रक्रिया को पूरा करने की आवश्यकता होती है, विवाद को मध्यस्थता के लिए संदर्भित करने का अधिकार केवल तभी उत्पन्न होगा जब पक्षकारों ने उक्त प्रक्रिया पूरी कर ली हो। प्रतिपक्ष सहमत पूर्व-संबंधित विवाद समाधान प्रक्रिया से बचने के लिए विवादों को मध्यस्थता के लिए संदर्भित करने के लिए उठाए गए किसी भी कदम पर वैध आपत्ति उठा सकता है। यदि पक्ष इस बात पर सहमत हुए हैं कि वे पहले विवादों को एक विशेष तरीके से सौहार्दपूर्ण ढंग से हल करने का प्रयास करेंगे, विवादों को मध्यस्थता के लिए संदर्भित करने के किसी भी अधिकार का प्रयोग करने से पहले उनके लिए उस प्रक्रिया को पूरा करना आवश्यक है।

59. हरि शंकर सिंघानिया बनाम गौर हरि सिंघानिया [(2006) 4 एस.सी.सी. 658] में, सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट रूप से माना कि मध्यस्थता का संदर्भ "आवेदन करने का अधिकार मिलने पर तीन साल की अवधि के भीतर दायर किया जाना आवश्यक है"। इसलिए, यह निर्धारित करना महत्वपूर्ण है कि किसी मामले में ऐसा 'लागू करने का अधिकार' कब प्राप्त होता है। न्यायालय के अनुसार, आवेदन करने का अधिकार तब मिलेगा जब मध्यस्थता समझौते के पक्षकारों के बीच मतभेद स्पष्ट हों - जब पक्ष 'विच्छेद बिंदु' पर पहुँच जाएँ, अर्थात्, जब सुलह के साथ या उसके बिना समझौता संभव नहीं हो। प्रासंगिक रूप से, न्यायालय

ने कहा कि परिसीमा अवधि तब तक शुरू नहीं होगी जब तक कि पक्ष चर्चा कर रहा है, भले ही इस अवधि के दौरान मतभेद सामने आएँ हो, क्योंकि इसके विपरीत व्याख्या अनिवार्य रूप से "पक्षों को मुकदमेबाजी/मध्यस्थता का सहारा लेने के लिए मजबूर करेगी, यहाँ तक कि जहाँ पक्षों द्वारा स्वयं मुद्दों को हल करने की गंभीर संभावना हो"। इस प्रकार, यह कहा जा सकता है कि आवेदन करने का अधिकार "केवल पार्टियों और के बीच अंतिम पत्राचार की तिथि पर" प्राप्त हुआ है और परिसीमा की अवधि पक्षों के बीच अंतिम संचार की तिथि से शुरू होती है।"

51. याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने 2023 एस.सी.सी. ऑनलाइन कलकत्ता 756 में प्रतिवेदित जिलोन इंफ्राप्रोजेक्ट्स प्राइवेट लिमिटेड बनाम भारत हेवी इलेक्ट्रिकल्स लिमिटेड में कलकत्ता उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय पर भी भरोसा जताया, जिसमें, उच्च न्यायालय ने निम्नानुसार व्यक्त किया :

"33. इसलिए, उपरोक्त तथ्यों के सावधानीपूर्वक अवलोकन के बाद, यह कहना गलत नहीं होगा कि यहां वादहेतुक 'निरंतर' प्रकृति का रहा है। याचिकाकर्ता के दावे कभी भी अंतिम रूप से प्राप्त नहीं हुए, और एक 'वर्तमान दावा' बनकर रह गए क्योंकि दोनों पक्ष अपने बीच के विवादों को सुलझाने के लिए आपसी चर्चा कर रहे थे। मध्यस्थता याचिका 28 जुलाई, 2021 को दायर की गई थी जो प्रत्यर्थी के ईमेल दिनांक 09 जनवरी, 2020 के माध्यम से अंतिम संचार से डेढ़

साल की अवधि के भीतर है, और 16 जनवरी, 2019 को धारा 21 सूचना जारी होने से ढाई साल की अवधि के भीतर है।

XXX

XXX

XXX

35. इसलिए, याचिकाकर्ता के खिलाफ परिसीमा अवधि 05 फरवरी, 2019 से लागू नहीं होगी, और इसलिए, वर्तमान याचिका समय के भीतर ही है और परिसीमा द्वारा वर्जित नहीं है।"

अंतिम विश्लेषण

52. उपरोक्त सभी निर्णयों के संदर्भ में जो स्पष्ट है वह यह है कि इस दलील के बीच एक सही अंतर है कि उठाए गए दावे परिसीमा से वर्जित हैं और इस दलील के बीच की मध्यस्थता की नियुक्ति हेतु आवेदन परिसीमा से वर्जित है।

53. न्या. मुखर्जी, द्वारा ए.आई.आर. 1924 कलकत्ता 600 में प्रतिवेदित *द्विजेन्द्र नारायण राय बनाम जोगेस चंद्र डे और अन्य* के मामले में ने यह निर्धारित करने के लिए सही परीक्षण की व्याख्या की है कि वाद हेतुक कारण कब माना जा सकता है, जिसे निम्नानुसार देखा जा सकता है:

"10. ...मामले का सार यह है कि वह समय तब आता है जब वाद हेतुक कारण प्राप्त होता है और वाद हेतुक कारण तब प्राप्त होता है जब अस्तित्व में कोई व्यक्ति होता है जो मुकदमा कर सकता है और दूसरा जिस पर मुकदमा चलाया जा सकता है, और जब सभी तथ्य हुए होते हैं जो वादी को सफल होने का

अधिकार देने के लिए साबित होने वाले सामग्री होते हैं, कोबर्न बनाम कॉलेज [(1897) 1 क्यू.बी. 702]; गेलमनी बनाम मोरिंगिया [(1913) 2 के.बी. 549]। वाद हेतुक कारण तभी उत्पन्न होता है जब पीडित पक्ष को राहत के लिए उचित अधिकरण में आवेदन करने का अधिकार होता है: व्हाली बनाम व्हाली [(1816) 1 एम.आर. 436]। यह कानून ऐसे दावे से जुड़ा नहीं है जिसके लिए अभी तक कार्रवाई का कोई अधिकार नहीं है और यह ऐसे अधिकार के विरुद्ध नहीं चलता है जिसके लिए कोई संबंधित उपाय नहीं है या जिसके लिए निर्णय प्राप्त नहीं किया जा सकता है। नतीजतन, यह निर्धारित करने का सच्चा परीक्षण कि कार्रवाई का कारण कब उत्पन्न हुआ है, उस समय का पता लगाना है जब वादी पहली बार सफल परिणाम के लिए अपनी कार्रवाई को बनाए रख सकता था। ..."

(जोर दिया गया)

54. "वाद हेतुक" का अर्थ भौतिक तथ्यों का पूरा बंडल है, जिसे वाद में सफल होने का हकदार बनाने के लिए वादी को साबित करना अपेक्षित है। आई.एल.आर. (1889) 16 कलकत्ता 98 में प्रतिवेदित *मुसुम्मत चंद कौर और अन्य बनाम प्रताप सिंह और अन्य*, मामले में मंडल का निर्णय सुनाते हुए, लॉर्ड वॉटसन ने कहा:

आई.एल.आर. (1889) 16 कलकत्ता 98 में प्रतिवेदित, लॉर्ड वॉटसन ने कहा:

"अब वाद हेतुक कारण का बचाव पक्ष से कोई संबंध नहीं है जो प्रतिवादी द्वारा स्थापित किया जा सकता है. और न ही यह वादी द्वारा मांगी गई राहत के स्वरूप पर निर्भर करता है-यह पूरी तरह से शिकायत में हेतुक कारण के रूप में निर्धारित आधारों को संदर्भित करता है, या दूसरे शब्दों में मीडिया को संदर्भित करता है जिस पर वादी न्यायालय से अपने पक्ष में किसी निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए कहता है।"

(जोर दिया गया)

55. कार्रवाई करने के लिए परिसीमा अवधि की गणना करने के उद्देश्यों के लिए वाद हेतुक महत्वपूर्ण हो जाता है। यह आवश्यक है कि एक पक्ष को पता चले कि वाद हेतुक कब उत्पन्न होता है। यदि कोई पक्ष अधिनियम 1996 के तहत संदर्भ की माँग करने के लिए सूचना भेजने में देरी करता है क्योंकि वे इस बारे में स्पष्ट नहीं हैं कि वाद हेतुक कारण कब उत्पन्न हुआ, तो पक्ष को इसका एहसास होने से पहले ही दावा समय-वर्जित हो सकता है।

56. एंथनी वाल्टन द्वारा मध्यस्थता पर रसेल (19वीं संस्करण) पृष्ठ 4-5 में कहा गया है कि मध्यस्थता शुरू करने के लिए परिसीमा की अवधि उस तिथि से चलती है जिस दिन "मध्यस्थता हेतुक" अर्जित हुआ था, अर्थात् उस तिथि से जब दावेदार ने पहली बार कार्रवाई का अधिकार या यह माँग करने का अधिकार प्राप्त किया था कि संबंधित विवाद पर मध्यस्थता हो। मध्यस्थता शुरू करने के लिए परिसीमा की

अवधि उस तारीख से चलती है जिस दिन मध्यस्थता खंड नहीं होता, तो वाद हेतुक कारण प्राप्त होगा:

"जिस तरह वाद हेतुक में दावा उस तिथि से निर्दिष्ट वर्षों की समाप्ति के बाद नहीं लाया जाना चाहिए जिस दिन वाद हेतुक उत्पन्न हुआ था, उसी तरह मध्यस्थता के मामले में भी दावा अर्जित होने की तिथि से निर्दिष्ट वर्षों की संख्या की समाप्ति के बाद दावा आगे नहीं बढ़ाया जाना चाहिए।"

भले ही मध्यस्थता खंड में एक प्रावधान है कि किसी भी मामले के संबंध में वाद हेतुक तब तक प्राप्त नहीं होगा जब तक कि कोई निर्णय नहीं किया जाता है, तब भी समय सामान्य तिथि से चलता है जब वाद हेतुक उत्पन्न होता यदि कोई मध्यस्थता खंड नहीं होता है।

57. न्यायाधीश द्वारा मध्यस्थता के कानून में पृष्ठ सं. 549, धारा 37 पर टिप्पणी करते हुए, यह कहा गया है कि अधिनियम 1963 के अधीन, प्रत्येक मध्यस्थता निर्धारित अवधि के भीतर शुरू की जानी चाहिए। जिस प्रकार दावा उत्पन्न होने की तिथि से निर्दिष्ट वर्षों की समाप्ति के बाद वाद हेतुक दावा नहीं किया जाना चाहिए, उसी प्रकार मध्यस्थता के मामले में दावा उत्पन्न होने की तारीख से निर्दिष्ट वर्षों की समाप्ति के बाद दावा आगे नहीं बढ़ाया जाना चाहिए। धारा 37(1) के प्रयोजन के लिए "कार्रवाई" और "मध्यस्थता हेतुक" को मध्यस्थता और मध्यस्थता हेतुक माना जाना चाहिए। मध्यस्थता का कारण तब उत्पन्न होता है जब दावेदार प्रश्न उठाने का हकदार हो जाता है, अर्थात्, जब

दावेदार मध्यस्थता की आवश्यकता का अधिकार प्राप्त कर लेता है। अधिनियम 1996 की धारा 11 के तहत एक आवेदन अधिनियम 1963 की अनुसूची के अनुच्छेद 137 द्वारा शासित होता है और पहली बार आवेदन करने का अधिकार मिलने की तिथि से 3 साल के भीतर किया जाना चाहिए। आवेदन करने का कोई अधिकार नहीं है जब तक कि प्रत्यर्थी द्वारा उस अधिकार से स्पष्ट और साफ इनकार नहीं किया जाए। इसलिए, यह स्पष्ट होना चाहिए कि मध्यस्थता का दावा जैसे ही मध्यस्थता का कारण उत्पन्न होता है, उठाया जाना चाहिए जैसा कि किसी नागरिक कार्रवाई में वाद हेतुक के मामले में होता है।

58. क्या कोई विशेष तथ्य वाद हेतुक बनता है, इसका निर्धारण कार्रवाई के रूप के बजाय प्रत्येक मामले के तथ्यों और सार के संदर्भ में किया जाना चाहिए। यदि किसी विशेष समय पर किसी अधिकार का उल्लंघन होता है, तो वाद हेतुक का पूरा कारण उस समय उत्पन्न हुआ माना जाएगा। ऐसे मामले में, किसी पक्ष के लिए यह खुला नहीं है कि वह सीमा अधिनियम द्वारा प्रदान किए गए समय के भीतर अपने अधिकार के विवाद, जिसका उल्लंघन किया गया था, के निपटारे के लिए एक आवेदन दायर न करे और समय बीतने पर उसके अधिकार को समाप्त होने दें, और उसके बाद, अन्य वाद हेतुक की प्रतीक्षा करें और फिर अधिनियम 1996 की खंड 11 के तहत अपने अधिकार की स्थापना के लिए एक आवेदन दायर करे, जो तब अस्तित्व में नहीं था, और जो लंबे समय से समाप्त हो गया था, क्योंकि ऐसे मामले में, इस तरह के आवेदन का अर्थ एक अधिकार के पुनरुद्धार के लिए एक

आवेदन होगा, जो अधिनियम 1963 के तहत लंबे समय से समाप्त हो गया था और इसलिए, जो सभी उद्देश्यों हेतु अस्तित्व में नहीं है। इस तरह की कार्यवाही बनाए रखने योग्य नहीं होगी और स्पष्ट रूप से अधिनियम 1963 के अनुच्छेद 137 के तहत परिसीमा की याचिका द्वारा पूरी की जाएगी।

59. हम एक बार फिर वर्तमान मामले के तथ्यों पर वापस आते हैं। यहां तक कि याचिकाकर्ता के अनुसार, दिनांक 16.02.2016 के पत्र के माध्यम से यूरो 201,793.75 ("बीजी") के लिए बैंक गारंटी के गलत तरीके से नकदीकरण और यूरो 399,0240.10 के लिए गलत तरीके से परिसमापन हर्जाना लगाने के संबंध में पार्टियों के बीच विवाद उत्पन्न हुए। . हम विद्वान एसजी के साथ सहमत हैं कि यह "ब्रेकिंग पॉइंट" था। अधिक महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि प्रत्यर्थी ने दिनांक 26.09.2016 को परिसमाप्त नुकसानी की वसूली के लिए राशि काट ली। दिनांक 11.08.2016 के पत्र में निहित निर्देशों के अनुसार अपेक्षित राशि सरकारी खाते में जमा की गई थी। यही बात का अंत था। यह कहना कि उसके बाद भी, याचिकाकर्ता कुछ सौहार्दपूर्ण समझौते की प्रत्याशा में प्रत्यर्थी के साथ बातचीत करता रहा, जो परिसीमा की अवधि को नहीं बचाएगा।

60. उपरोक्त संदर्भ में, हम याचिकाकर्ता को प्रत्यर्थी द्वारा संबोधित पूरे पत्र दिनांकित 24.02.2016 को पुनः प्रस्तुत करना उचित समझते हैं। पत्र इस प्रकार है:

“फैक्स द्वारा

रक्षा मंत्रालय (सेना)
के एकीकृत
मुख्यालय

मास्टर जनरल
ऑफ ऑर्डनेंस ब्रांच

प्रोक्योरमेंट प्रोग्रेसिंग
ऑर्गनाइजेशन

रूम नंबर 230, बी
विंग, सेना भवन

डी.एच.क्यू. पी.ओ.,
नई दिल्ली-110011

78953/एस.एम.जी./जी.एस./डब्ल्यू.ई.-
4/पी.पी.ओ./डी.(एम.सी.) 876

24
फ़रवरी
2016

मैसर्स बी एंड टी स्विट्ज़रलैंड
पी.ओ. बॉक्स 174, 3604 थून
स्विट्ज़रलैंड
फ़ैक्स : 0041 33 3346701
स्थानीय : 46088802

संविदा सं.
78953/एस.एम.जी./जी.एस./डब्ल्यू.ई.-4 दिनांक

**27 मार्च 2012 एफ़.टी.पी. के तहत गुणवत्ता
1568 सब-मशीन गन के उपापन के लिए**

1. 19 फ़रवरी 2016 के अपने पत्र सं. बी एंड टी/1568/2016 का संदर्भ लें।
2. वा.बै.गा. भुनाने के लिए विषय निर्देश, आपके औचित्य की उचित जाँच और विश्लेषण के बाद, रक्षा मंत्रालय के सक्षम प्राधिकारी की मंजूरी के साथ पत्र बी एंड टी/1568/10-26 दिनांक 24 अक्टूबर 2014 के माध्यम से जारी किए गए हैं।
3. इस प्रकार, आप कृपया आवश्यक कार्रवाई/निर्देशों के लिए रक्षा मंत्रालय से संपर्क कर सकते हैं।

(अप्रतिम शर्मा)

लेफ़्टिनेंट कर्नल

ए.एम.जी.ओ. (आयात 1)

डी.डी.जी. पी.पी.ओ. के
लिए”

61. उपरोक्त पत्र को प्रत्यक्ष पढ़ने से यह संकेत मिलता है कि दोनों पक्षों के बीच विवाद 2014 में ही शुरू हो गए थे। यह उपरोक्त पत्र दिनांक 24.02.2016 में अंकित दिनांक 24.10.2014 से स्पष्ट है। यह पत्र इंगित करता है कि पक्षों के बीच विवाद उत्पन्न होने के बाद, याचिकाकर्ता ने अपना स्पष्टीकरण देने का प्रयास किया और पत्र दिनांक

24.10.2014 के माध्यम से अपना मामला रखा। प्रत्यर्थी ने दिनांक 24.02.2016 को पत्र द्वारा स्पष्ट किया या याचिकाकर्ता को सूचित किया कि याचिकाकर्ता द्वारा दिनांक 24.10.2014 के पत्र के माध्यम से दिए गए औचित्य पर विधिवत विचार किया गया और उसके बाद, परिनिर्धारित नुकसानी की भुनाई हेतु अंतिम निर्णय लिया गया। इसलिए, याचिकाकर्ता का यह कहना उचित नहीं है कि उसने 2019 तक समझौता जारी रखा। इस संबंध में केवल निराधार दावा पर्याप्त नहीं है जैसा कि इस न्यायालय ने जियो मिलर (उपरोक्त) में देखा है। पक्षों के मध्य बातचीत के पूर्ण इतिहास का विशेष रूप से अभिवचन किया जाना चाहिए और अभिलिखित किया जाना चाहिए। बातचीत के संपूर्ण इतिहास का अभिवचन करने और अभिलिखित रखने के बाद ही न्यायालय इस तरह के इतिहास पर विचार करने की स्थिति में होगा ताकि यह पता लगाया जा सके कि "विच्छेद बिंदु (ब्रेकिंग पॉइंट)" क्या था जिस पर किसी भी उचित पक्ष ने समझौते पर पहुँचने के प्रयासों को छोड़ दिया होगा और मध्यस्थता के लिए विवाद को निर्दिष्ट करने पर विचार किया होगा।

62. पुनरावृत्ति के खर्च पर, हम कहते हैं कि जब वर्ष 2016 में बैंक गारंटी को भुनाया गया और अपेक्षित राशि सरकारी लेखे में स्थानान्तरित कर दी गई, जो मामले का अंत था। इस "विच्छेद बिंदु (ब्रेकिंग पॉइंट)" को उस तिथि के रूप में माना जाना चाहिए जिस पर परिसीमा के उद्देश्य से वादहेतुक उत्पन्न हुआ था।

63. वादहेतुक उत्पन्न होने के बाद दस या बीस वर्ष की अवधि के लिए भी बातचीत जारी रह सकती है। केवल

बातचीत परिसीमा के उद्देश्य हेतु "वादहेतुक" को स्थगित नहीं करेगी। विधानमंडल ने दावे के प्रवर्तन हेतु तीन वर्ष की परिसीमा निर्धारित की है और इस वैधानिक समयावधि को इस आधार पर विफल नहीं किया जा सकता है कि पक्ष समझौता कर रहे थे।

64. पंचु गोपाल बोस बनाम पोर्ट ऑफ इंडिया के लिए न्यासी मंडल कलकत्ता ने (1993) 4 एस.सी.सी. 338 में प्रतिवेदित, इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि अधिनियम 1963 के प्रावधान मध्यस्थताओं पर लागू होंगे और इसके विपरीत संविदा में किसी भी अवधि के होते हुए भी, परिसीमा के उद्देश्य से मध्यस्थता का कारण पक्ष को उस समय प्रोद्भूत हुआ माना जाएगा, जब ऐसा कोई मामला प्रोद्भूत हुआ हो, किंतु संविदा हेतु। मध्यस्थता हेतुक तब शुरू हुआ माना जाएगा जब एक पक्ष दूसरे पक्ष को मध्यस्थ की नियुक्ति की आवश्यकता की सूचना देता है। प्रश्न यह था कि संविदा निष्पादित होने के बाद लंबे समय तक सूचना जारी करने या सूचना जारी करने की चूक के अभाव में मध्यस्थता का कारण कब उत्पन्न होता है? मध्यस्थता का अर्थ है जैसे ही मतभेद या विवाद उत्पन्न होता है, मध्यस्थता समझौते का लाभ उठाने हेतु मध्यस्थता के समय पर प्रारंभ होने का आदेश देना। विलंब न्याय को विफल करती है और समता शीघ्रता और प्रभावी परिणामों में सहायता करती है। मध्यस्थता हेतुक में दावे को वर्जित करने की अनुमति दिए जाने के बाद चूक करने वाले पक्ष को कष्ट वहन करना चाहिए और दूसरे पक्ष को कष्ट पारेषण नहीं करना चाहिए। यह भी अभिनिर्धारित किया गया कि जहाँ मध्यस्थता समझौता

वास्तव में मौजूद नहीं है या अस्तित्व में नहीं है या जहां विवाद मध्यस्थता समझौते के दायरे से बाहर लागू होता है, काफी समय बीतने के बाद दावे की अनुमति देना, विपरीत पक्ष के लिए उत्पीड़न होगा। तदनुसार उस मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि चूँकि याचिकाकर्ता ने 10 वर्षों से अधिक समय तक अपने अधिकारों हेतु कुछ नहीं किया, इसलिए अपने आचरण से उसने मध्यस्थता को परिसीमा द्वारा वर्जित करने की अनुमति दी और न्यायालय अधिनियम की धारा 5 और 12 (2) (ख) के तहत मध्यस्थता समझौते से पक्ष को राहत देने में न्यायोचित होगा। [देखें : *उडीसा राज्य बनाम दामोदर दास*, (1996) 2 एस.सी.सी. 216]

65. *पंचु गोपाल* (पूर्वोक्त) में इस न्यायालय द्वारा क्रमशः पैरा 10,11,12,13,14 और 15 में की गई टिप्पणियां भी प्रासंगिक हैं। टिप्पणियाँ इस प्रकार हैं:

"10. यॉर्कशायर काउंटी काउंसिल बनाम हडर्सफील्ड कॉर्प. [(1957) 1 ए.आई.आई. ई.आर. 669] के वेस्ट राइडिंग मामले में क्वीन्स खंड पीठ, मु.न्या.लॉर्ड गोडार्ड, (जैसा कि वह तब थे) ने अभिनिर्धारित कि परिसीमा अधिनियम मध्यस्थता पर लागू होता है क्योंकि यह उच्च न्यायालय में कार्रवाई पर लागू होता है और एक दावे के कानून के रूप में निषिद्ध होने के बाद, इसे मध्यस्थता में प्रस्तुत करने का निर्णय लिया जाता है, परिसीमा के कानून को अभिवाक् करने से नहीं रोकता है। मध्यस्थता पर रसेल, 19वां संस्करण, उपरोक्त प्रतिपादना को दोहराता है। पृष्ठ 4 पर यह भी कहा गया है कि मध्यस्थता समझौते के पक्षकार यदि

चाहें तो इसमें प्रावधान कर सकते हैं कि मध्यस्थता कानून द्वारा अनुमत अवधि से कम अवधि के भीतर शुरू की जानी चाहिए; परंतु न्यायालय के पास तब इस तरह से सहमत समय को बढ़ाने की शक्ति है। मध्यस्थता प्रारंभ करने हेतु परिसीमा की अवधि उस तिथि से चलती है जिस दिन मध्यस्थता हेतुक प्रोद्भूत होता है, अर्थात् उस तिथि से जब दावेदार ने पहली बार कार्रवाई का अधिकार या यह माँगने का अधिकार अर्जित किया था कि संबंधित विवाद पर मध्यस्थता हो।

11. इसलिए, मध्यस्थता प्रारंभ करने हेतु परिसीमा की अवधि उस तिथि से चलती है, जिस दिन यदि कोई मध्यस्थता खंड नहीं होता, तो वादहेतुक प्रोद्भूत होता। जिस तरह कार्रवाइयों के मामले में दावा उस तिथि से वर्षों की एक निर्दिष्ट संख्या की समाप्ति के बाद नहीं लाया जाना है, जिस दिन वादहेतुक प्रोद्भूत हुआ हो, उसी तरह मध्यस्थता के मामले में, दावा प्रोद्भूत होने की तिथि से निर्दिष्ट वर्षों की समाप्ति के बाद दावा प्रस्तुत नहीं किया जाना है।

12. मध्यस्थता पर रसेल मामले में, पृष्ठ 72 और 73 पर यह इस प्रकार कहा गया है:

"संविदा के तहत विवादों को संविदा में एक मध्यस्थता खंड शामिल करके न्यायालय के क्षेत्राधिकार से हटाया जा सकता है, जिसमें प्रावधान है कि इसके तहत कोई भी मध्यस्थता एक निश्चित

समय के भीतर प्रारंभ की जानी चाहिए या बिल्कुल नहीं, और यह प्रावधान करने के लिए कि यदि मध्यस्थता प्रारंभ नहीं की जाती है तो संबंधित दावे को वर्जित कर दिया जाएगा। आवश्यक रूप से ऐसे प्रावधान एक साथ नहीं पाए जाते हैं। इस प्रकार संविदा दावे को वर्जित किए बिना मध्यस्थता हेतु समय सीमित कर सकती है, जिससे उस पक्ष को वंचित किया जा सकता है जो मध्यस्थता का दावा करने के अपने अधिकार के समय से बाहर है किंतु न्यायालयों में कार्रवाई के अधिकार को अनिर्णीत कर रहा है। या यह मध्यस्थता खंड के संचालन को सीमित किए बिना किसी भी दावे की समय-सीमा के अनुपालन को एक शर्त बना सकता है, जिससे एक पक्ष जो समय से बाहर है, को मध्यस्थता का दावा करने का अधिकार छोड़ सकता है, लेकिन यह मध्यस्थता में बचाव है कि दावा समय से बाहर है और वर्जित है। न ही, चूंकि संबंधित प्रावधान अनिवार्य रूप से अलग हैं, क्या ऐसा कुछ भी है जो पक्ष को मध्यस्थता के लिए अपनी आपत्ति को माफ़ करने के लिए परिसीमा खंड पर भरोसा करने से रोकता है, जबकि अभी भी दावे को प्रतिबंधित करने वाले खंड पर भरोसा करता है।"

पृष्ठ 80 पर यह इस प्रकार कहा गया है:

"समय का विस्तार स्वचालित नहीं है और यह केवल तभी दिया जाता है जब अन्यथा 'असम्यक् कष्ट' उत्पन्न होता है। हालाँकि, सभी कष्ट 'असम्यक् कष्ट'

नहीं हैं, यह उचित हो सकता है कि किसी पक्ष को अपनी चूक से हुई कठिनाई का वहन स्वयं करना चाहिए, और किसी दावे के वर्जित हो जाने पश्चात उसे पुनः आरंभ करने की अनुमति देकर इसे दूसरे पक्ष को हस्तांतरित नहीं किया जाना चाहिए। केवल इस तथ्य को कि किसी दावे को वर्जित किया गया था, उसे "असम्यक् कष्ट" नहीं माना जा सकता।"

13. न्यायमूर्ति बचावत द्वारा मध्यस्थता विधि अध्याय 37 में पृ. 549 में कहा गया है कि जिस तरह कार्रवाई के मामले में दावा प्रोद्भूत होने की तिथि से निर्दिष्ट वर्षों की समाप्ति के बाद दावा नहीं लाया जाना चाहिए, इसी तरह मध्यस्थता के मामले में भी, दावा प्रोद्भूत होने की तिथि से निर्दिष्ट वर्षों की समाप्ति के बाद दावा प्रस्तुत नहीं किया जाना चाहिए। धारा 37(1) के प्रयोजन हेतु परिसीमा अधिनियम में 'कार्रवाई' और 'वादहेतुक' को मध्यस्थता और मध्यस्थता हेतुक के रूप में समझा जाना चाहिए। इसलिए, मध्यस्थता का कारण तब उत्पन्न होता है जब दावेदार प्रश्न उठाने का हकदार हो जाता है, अर्थात् जब दावेदार मध्यस्थता की आवश्यकता का अधिकार प्राप्त कर लेता है। परिसीमा उस तिथि से लागू होगी जब मध्यस्थता का कारण उत्पन्न हुआ होगा, लेकिन समझौते के लिए।

14. मध्यस्थता का तात्पर्य मतभेद या विवाद उत्पन्न होते ही, मध्यस्थ समझौते का लाभ उठाते हुए समय पर मध्यस्थता प्रारंभ करना है। विलंब न्याय को विफल करता है और समता शीघ्रता और प्रभावी

परिणामों की सहायता करती है। मध्यस्थता हेतुक दावे को वर्जित करने की अनुमति दिए जाने के बाद, चूक करने वाले पक्ष को कष्ट वहन करना चाहिए और कष्ट को दूसरे पक्ष तक नहीं पहुंचाना चाहिए। इसलिए, जैसा कि पहले पूछा गया था, प्रश्न यह है कि क्या संविदा करने वाले पक्ष को संविदा को विखंडित करने की अनुमति देना न्यायालय के लिए उचित होगा या न्यायालय विवादों या मतभेदों को मध्यस्थता के लिए संदर्भित करने के अधिकार का प्रतिसंहरण कर सकती है। न्यायमूर्ति बाचावत ने अपने मध्यस्थता विधि में, पृष्ठ 552 में कहा है कि "समुचित मामले में मध्यस्थ के अधिकार का प्रतिसंहरण करने की अनुमति दी जानी चाहिए"। यह भी कहा गया था कि मध्यस्थ के कार्यों को सीमित या अनुकूलन करने वाली विशेष शर्त के बिना एक सामान्य प्रस्तुतीकरण में यह निहितार्थ होता है कि मध्यस्थ को परिसीमा के रूप में सभी विधिक बचावों को प्रवृत्त करना चाहिए। तदनुसार, मध्यस्थ सीमा विधि को लागू करने का हकदार और बाध्य था। परिसीमा अधिनियम की धारा 3 मध्यस्थता कार्यवाही के अनुरूप लागू की गई थी, और इसी तरह की व्याख्या परिसीमा अधिनियम की धारा 14 में की गई थी। माध्यस्थम् अधिनियम की धारा 14 के अर्थ में मध्यस्थता से पहले की कार्यवाही न्यायालय के समक्ष सिविल कार्यवाही के समान है। सहमति से पार्टियों ने अपने विवादों या मतभेदों को निपटाने के लिए विधि न्यायालय के स्थान पर मध्यस्थ को

प्रतिस्थापित कर दिया है। इसलिए, पक्षकारों के लिए यह विवृत है कि वे प्रतिरक्षा के रूप में उनके समक्ष कार्यवाही में परिसीमा का अभिवाक् दे सकते हैं।

15. मस्टीयू और बॉयड के वाणिज्यिक मध्यस्थता (1982 संस्करण) में अध्याय 31 में पृष्ठ 436 पर "होपलेस क्लेम" शीर्षक के तहत यह इस प्रकार कहा गया है:

"प्रत्यर्थी को ऐसे दावे से परेशान होने से बचाने के लिए व्यादेश के माध्यम से हस्तक्षेप करने का निस्संदेह कोई क्षेत्राधिकार नहीं है, जिससे कभी भी वैध निर्णय नहीं मिल सकता है, उदाहरण के लिए उन मामलों में जहां दावा कथित मध्यस्थता समझौते के संबंध में लाया जाता है जो वास्तव में अस्तित्व में नहीं है या जिसका अस्तित्व समाप्त हो गया है। इसलिए, यह विवाद मध्यस्थता समझौते के दायरे से बाहर है

(जोर दिया गया)

66. मौजूदा मामला स्पष्ट रूप से और निस्संदेह, निराशाजनक रूप से वर्जित दावों में से एक है, क्योंकि याचिकाकर्ता अपने आचरण से पाँच वर्ष से अधिक समय तक अपने अधिकार पर कोई कार्रवाई नहीं की। वैधानिक मध्यस्थताएँ अलग हैं।

67. उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, यह याचिका विफल हो जाती है और इसके द्वारा अस्वीकार की जाती है।

68. लंबित आवेदन (आवेदनों) यदि कोई है तो उनका निपटारा कर दिया जाएगा।

दिव्या पांडे

याचिका अस्वीकृत।

(सहायक: शेवाली मोंगा, एल.सी.आर.ए.)

(Translation has been done through AI Tool: SUVAS)

अस्वीकरण : देशी भाषा में निर्णय का अनुवाद मुकद्दमेबाज के सीमित प्रयोग हेतु किया गया है ताकि वो अपनी भाषा में इसे समझ सकें एवं यह किसी अन्य प्रयोजन हेतु प्रयोग नहीं किया जाएगा। समस्त कार्यालयी एवं व्यावहारिक प्रयोजनों हेतु निर्णय का अंग्रेजी स्वरूप ही अभिप्रमाणित माना जाएगा और कार्यान्वयन तथा लागू किए जाने हेतु उसे ही वरीयता दी जाएगी।

Disclaimer: The translated judgment in vernacular language is meant for the restricted use of the litigant to understand it in his/her language and may not be used for any other purpose for all practical and official purposes, the English version of the judgment shall be authentic and shall hold the field for the purpose of execution and implementation.